।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ३१ ।।

मुक्ति-दान

१) संन्यासी विजयानंद (२) बालाराम मानकर (३) नूलकर (४) मेघा और (५) बाबा के सम्मुख वाघ की मुक्ति

इस अध्याय में हेमाड़पंत बाबा के सामने कुछ भक्तों की मृत्यु तथा वाघ के प्राण-त्याग की कथा का वर्णन करते हैं।

प्रारम्भ

मृत्यु के समय जो अंतिम इच्छा या भावना होती है, वही भवितव्यता का निर्माण करती है। श्रीकृष्ण ने गीता (अध्याय ८) में कहा है कि जो अपने जीवन के अंतिम क्षण में मुझे स्मरण करता है, वह मुझे ही प्राप्त होता है तथा उस समय वह जो कुछ भी दृश्य देखता है, उसी को अन्त में पाता है। यह कोई भी निश्चयात्मक रुप से नहीं कह सकता कि उस क्षण हम केवल उत्तम विचार ही कर सकेंगे। जहाँ तक अनुभव में आया है, ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय अनेक कारणों से भयभीत होने की संभावना अधिक होती है। इसके अनेक कारण हैं। इसलिए मन को इच्छानुसार किसी उत्तम विचार के चिंतन में ही लगाने के लिए नित्याभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। इस कारण सभी संतों ने हरिस्मरण और जप को ही श्रेष्ठ बताया है, ताकि मृत्यु के समय हम किसी घरेलू उलझन में न पड़ जाए। अतः ऐसे अवसर पर भक्तगण पूर्णतः सन्तों के शरणागत हो जाते हैं, ताकि संत, जो कि सर्वज्ञ हैं, उचित पथप्रदर्शन कर हमारी यथेष्ट सहायता करें। इसी प्रकार के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

विजयानन्द

एक मद्रासी संन्यासी विजयानंद मानसरोवर की यात्रा करने निकले। मार्ग में वे बाबा की कीर्त्ति सुनकर शिरड़ी आए, जहाँ उनकी भेंट हरिद्वार के सोमदेव जी स्वामी से हुई और इनसे उन्होंने मानसरोवर की यात्रा के सम्बन्ध में पूछताछ की। स्वामीजी ने उन्हें बताया कि गंगोत्री से मानसरोवर ५०० मील उत्तर की ओर है तथा मार्ग में जो कष्ट होते हैं, उनका भी उल्लेख किया जैसे कि बर्फ की अधिकता, ५० कोस तक भाषा में भिन्नता तथा भूटानवासियों के संशयी स्वभाव, जो यात्रियों को अधिक कष्ट पहुँचाया करते हैं। यह सब सुनकर संन्यासी का चित्त उदास हो गया और उसने यात्रा करने का विचार त्यागकर मस्जिद में जाकर बाबा के श्री चरणों का स्पर्श किया। बाबा क्रोधित होकर कहने लगे-'' इस निकम्मे संन्यासी को निकालो यहाँ से। इसका संग करना व्यर्थ है।'' संन्यासी बाबा के स्वभाव से पूर्ण अपरिचित था। उसे बड़े निराशा हुई, परन्तु वहाँ जो कुछ भी गतिविधियाँ चल रही थीं, उन्हें वह बैठे-बैठे ही देखता रहा। प्रातःकाल का दरबार लोगों से ठसाठस भरा हुआ था और बाबा को यथाविधि अभिषेक कराया जा रहा था। कोई पाद-प्रक्षालन कर रहा था तो कोई चरणों को छूकर तथा कोई तीर्थस्पर्श से अपने नेत्र सफल कर रहा था। कुछ लोग उन्हें चन्दन का लेप लगा रहे थे तो कोई उनके शरीर में इत्र ही मल रहा था। जातिपाँति का भेदभाव भुलाकर सब भक्त यह कार्य कर रहे थे। यद्यपि बाबा उसपर क्रोधित हो गए थे तो भी संन्यासी के हृदय में उनके प्रति बड़ा प्रेम उत्पन्न हो गया था। उसे यह स्थान छोड़ने की इच्छा ही नह होती थी। दो दिन के पश्चात् ही मद्रास से पत्र आया कि उसकी माँ की स्थिति अत्यन्त चिंताजनक है; जिसे पढ़कर उसे बड़ी निराशा हुई और वह अपनी माँ के दर्शन की इच्छा करने लगा; परन्तु बाबा की आज्ञा के बिना वह शिरड़ी से जा ही कैसे सकता था? इसलिए वह हाथ में पत्र लेकर उनके समीप गया और उनसे घर लौटने की अनुमति माँगी। त्रिकालदर्शी बाबा को तो सबका भविष्य विदित ही था। उन्होंने कहा कि ''जब तुम्हें अपनी माँ से इतना मोह था तो फिर संन्यास धारण करने का कष्ट ही क्यों उठाया? ममता या मोह भगुवा वस्त्रधारियों को क्या शोभा देता है? जाओ, चुपचाप अपने स्थान पर रहकर कुछ दिन शांतिपूर्वक बिताओ। परन्तु सावधान ! वाड़े में चोर अधिक हैं। इसलिए द्वार बंद कर सावधानी से रहना, नहीं तो चोर सब कुछ चुराकर ले जाएँगे। 'लक्ष्मी' यानी संपत्ति चंचला है और यह शरीर भी नाशवान् है, ऐसा ही समझ कर इहलौकिक व पारलौकिक समस्त पदार्थों का मोह त्याग कर अपना कर्त्तव्य करो। जो इस प्रकार का आचरण कर श्रीहरि के शरणागत हो जाता है, उसका सब कष्टों से शीघ्र

छुटकारा हो उसे परमानंद की प्राप्ति हो जाती है। **जो परमात्मा का ध्यान व चिंतन प्रेम और भक्तिपूर्वक करता है, परमात्मा भी उसकी अविलम्ब सहायता करते हैं।** पूर्वजन्मों के शुभ संस्कारों के फलस्वरुप ही तुम यहाँ पहुँचे हो और अब जो कुछ मैं कहता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो और अपने जीवन के अंतिम ध्येय पर विचार करो। इच्छारहित होकर कल से भागवत का तीन सप्ताह तक पठन-पाठन प्रारम्भ करो। तब भगवान् प्रसन्न होंगे और तुम्हारे सब दुःख दूर कर देंगे। माया का आवरण दूर होकर तुम्हें शांति प्राप्त होगी।'' बाबा ने उसका अंतकाल समीप देखकर उसे यह उपचार बता दिया और साथ ही 'रामविजय' पढ़ने की भी आज्ञा दी, जिससे यमराज अधिक प्रसन्न होते हैं। दूसरे दिन स्नानादि तथा अन्य शुद्धि के कृत्य कर उसने लेंडी बाग के एकांत स्थान में बैठकर भागवत का पाठ प्रारम्भ कर दिया। दूसरी बार का पठन समाप्त होने पर वह बहुत थक गया और वाड़े में आकर दो दिन ठहरा। तीसरे दिन बड़े बाबा की गोद में उसके प्राण पखेरु उड़ गये। बाबा ने दर्शनों के निमित्त एक दिन के लिए उसका शरीर सँभाल कर रखने के लिए कहा। तत्पश्चात् पुलिस आई और यथोचित जाँच-पड़ताल करने के उपरांत मृत शरीर को उठाने की आज्ञा दे दी। धार्मिक कृत्यों के साथ उसकी उपयुक्त स्थान पर समाधि बना दी गई। बाबा ने इस प्रकार संन्यासी की सहायता कर उसे सद्‌गति प्रदान की।

बालाराम मानकर

बालाराम मानकर नामक एक गृहस्थ बाबा के परम भक्त थे। जब उनकी पत्नी का देहांत हो गया तो वे बड़े निराश हो गए और सब घरबार अपने लड़के को सौंप वे शिरड़ी में आकर बाबा के पास रहने लगे। उनकी भक्ति देखकर बाबा उनके जीवन की गति परिवर्तित कर देना चाहते थे। इसलिए उन्होंने उन्हें बारह रुपये देकर मच्छिंद्रगढ़ (जिला सातारा) में जाकर रहने को कहा। मानकर की इच्छा उनका सान्निध्य छोड़कर अन्यत्र कहीं जाने की न थी, परन्तु बाबा ने उन्हें समझाया कि '' तुम्हारे कल्याणार्थ ही मैं यह उत्तम उपाय तुम्हें बतला रहा हूँ। इसलिए वहाँ जाकर दिन में तीन बार प्रभु का ध्यान करो।'' बाबा के शब्दों में विश्वास कर वह मच्छिंद्रगढ़ चला गया और वहाँ के मनोहर दृश्यों, शीतल जल तथा उत्तम पवन और समीपस्थ दृश्यों को देखकर उसके चित्त को बड़ी प्रसन्नता हुई। बाबा द्वारा बतलाई विधि से उसने प्रभु का ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया और कुछ दिनों के पश्चात् ही उसे दर्शन प्राप्त हो गया। बहुधा भक्तों को समाधि या तुरीयावस्था में ही दर्शन होते हैं, परन्तु मानकर जब तुरीयावस्थासे प्राकृतावस्था में आया, तभी उसे दर्शन हुए। दर्शन होने के पश्चात् मानकर ने बाबा से अपने को वहाँ भेजने का कारण पूछा। बाबा ने कहा कि '' शिरड़ी में तुम्हारे मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लगे थे। इसी कारण मैंने तुम्हें वहाँ भेजा कि तुम्हारे चंचल मन को शांति प्राप्त हो। तुम्हारी धारणा थी कि मैं शिरड़ी में ही विद्यमान हूँ और साढ़ेतीन हाथ के इस पंचतत्व के पुतले के अतिरिक्त कुछ नहीं हूँ, परन्तु अब तुम मुझे देखकर यह धारणा बना लो कि जो तुम्हारे सामने शिरड़ी में उपस्थित है और जिसके तुमने दर्शन किए, वह दोनों अभिन्न हैं या नहीं। मानकर वह स्थान छोड़कर अपने निवास स्थान बाँद्रा को रवाना हो गया। वह पूना से दादर रेल द्वारा जाना चाहता था। परन्तु जब वह टिकट-घर पर पहुँचा तो वहाँ अधिक भीड़ के कारण वह टिकट खरीद न सका। इतने में ही एक देहाती, जिसके कंधे पर एक कम्बल पड़ा था तथा शरीर पर केवल एक लंगोटी के अतिरिक्त कुछ न था, वहाँ आया और मानकर से पूछने लगा कि '' आप कहाँ जा रहे हैं? मानकर ने उत्तर दिया कि मैं दादर जा रहा हूँ। तब वह कहने लगा कि '' मेरा यह दादर का टिकट आप ले लीजिये, क्योंकि मुझे यहाँ एक आवश्यक कार्य आ जाने के कारण मेरा जाना आज न हो सकेगा।'' मानकर को टिकट पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई और अपनी जेब से वे पैसे निकालने लगे। इतने में ही टिकट देने वाला आदमी भीड़ में कहीं अदृश्य हो गया। मानकर ने भीड़ में पर्याप्त छानबीन की, परन्तु सब व्यर्थ ही हुआ। जब तक गाड़ी नहीं छूटी, मानकर उसके लौटने की ही प्रतिक्षा करता रहा, परंतु वह अन्त तक न लौटा। इस प्रकार मानकर को इस विचित्र रुप में द्वितीय बार दर्शन हुए। कुछ दिन अपने घर ठहरकर मानकर फिर शिरड़ी लौट आया और श्रीचरणों में ही अपने दिन व्यतीत करने लगा। अब वह सदैव बाबा के वचनों और आज्ञा का पालन करने लगा। अन्ततः उस भाग्यशाली ने बाबा के समक्ष ही उनका आशीर्वाद प्राप्त कर अपने प्राण त्यागे।

तात्यासाहेब नूलकर

हेमाड़पंत ने तात्यासाहेब नूलकर के सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं लिखा है। केवल इतना ही लिखा है कि उनका देहांत शिरड़ी में हुआ था। 'साईलीला' पत्रिका में संक्षिप्त विवरण प्रकाशित हुआ था, जो नीचे उद्धृत है-'' सन् १९०९ में जिस समय तात्यासाहेब पंढरपुर में उपन्यायाधीश थे, उसी समय नानासाहेब चाँदोरकर भी वहाँ के

मामलतदार थे। ये दोनों आपस में अधिकांश मिला करते और प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप किया करते थे। तात्यासाहेब सन्तों में अविश्वास करते थे, जबकि नानासाहेब की सन्तों के प्रति विशेष श्रद्धा थी। नानासाहेब ने उन्हें साईबाबा की लीलाएँ सुनाईं और एक बार शिरड़ी जाकर बाबा का दर्शन-लाभ उठाने का आग्रह भी किया। वे दो शर्त्तो पर चलने को तैयार हुएः- (१) उन्हें ब्राह्मण रसोईया मिलना चाहिए; (२) भेंट के लिए नागपुर से उत्तम संतरे होने चाहिए। शीघ्र ही ये दोनों शर्त्ते पूर्ण हो गईं। नानासाहेब के पास एक ब्राह्मण नौकरी के लिए आया, जिसे उन्होंने तात्यासाहेब के पास भिजवा दिया और एक संतरे का पार्सल भी आया, जिसपर भेजने वाले का कोई पता न लिखा था। उनकी दोनों शर्तें पूरी हो गई थी। इसलिए अब उन्हें शिरड़ी जाना ही पड़ा। पहले तो बाबा उनपर क्रोधित हुए, परन्तु जब धीरे-धीरे तात्यासाहेब को विश्वास हो गया कि वे सचमुच ही ईश्वरावतार हैं तो वे बाबा से प्रभावित हो गए और फिर जीवनपर्यन्त वहीं रहे। जब उनका अन्तकाल समीप आया तो उन्हें पवित्र धार्मिक पाठ सुनाया गया और अंतिम क्षणों में उन्हें बाबा का पदतीर्थ भी दिया गया। उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर बाबा बोल उठे - '' अरे ! तात्या तो आगे चला गया। अब उसका पुनः जन्म नहीं होगा।''

मेघा

२८ वें अध्याय में मेघा की कथा का वर्णन किया जा चुका है। जब मेघा का देहांत हुआ तो सब ग्रामवासी उनकी अर्थी के साथ चले और बाबा भी उनके साथ सम्मिलित हुए तथा उन्होंने उसके मृत शरीर पर फूल बरसाए। दाह-संस्कार होने के पश्चात् बाबा की आँखों से आँसू गिरने लगे। एक साधारण मनुष्य के समान उनका भी हृदय दुःख से विदीर्ण हो गया। उनके शरीर को फूलों से ढँककर एक निकट सम्बन्धी के सदृश रोते-पीटते वे मस्जिद को लौटे। सद्गति प्रदान करते हुए अनेक संत देखने में आए हैं, परन्तु बाबा की महानता अद्वितीय ही है। यहाँ तक कि वाघ सरीखा एक हिंसक पशु भी अपनी रक्षा के लिए बाबा की शरण में आया, जिसका वृत्तान्त निम्नलिखित हैंः-

वाघ की मुक्ति

बाबा के समाधिस्थ होने के सात दिन पूर्व शिरड़ी में एक विचित्र घटना घटी। मस्जिद के सामने एक बैलगाड़ी आकर रुकी, जिसपर एक वाघ जंजीरों से बँधा हुआ था। उसका भयानक मुख गाड़ी के पीछे की ओर था। वह किसी अज्ञात पीड़ा या दर्द से दुःखी था। उसके पालक तीन दरवेश थे, जो एक गाँव से दूसरे गाँव में जाकर उसका नित्य प्रदर्शन करते और इस प्रकार यथेष्ठ द्रव्य संचय करते थे और यही उनके जीविकोपार्जन का एक साधन था। उन्होंने उसकी चिकित्सा के सभी प्रयत्न किए, परन्तु सब कुछ व्यर्थ हुआ। कहीं से बाबा की कीर्त्ति भी उनके कानों में पड़ गई और वे वाघ को लेकर साई दरबार में आये। हाथों से जंजीरें पकड़कर उन्होंने बाघ को मस्जिद के दरवाजे पर खड़ा कर दिया। वह स्वभावतः ही भयानक था, पर रुग्ण होने के कारण वह बेचैन था। लोग भय और आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखने लगे। दरवेश अन्दर आए और बाबा को सब हाल बताकर उनकी आज्ञा लेकर वे वाघ को उनके सामने लाए। जैसे ही वह सीढ़ियों के समीप पहुँचा, वैसे ही बाबा के तेजःपुंज स्वरुप का दर्शन कर एक बार पीछे हट गया और अपनी गर्दन नीचे झुका दी। जब दोनों की दृष्टि आपस में एक हुई तो वाघ सीढ़ी पर चढ़ गया और प्रेमपूर्ण दृष्टि से बाबा की ओर निहारने लगा। उसने अपनी पूँछ हिलाकर तीन बार जमीन पर पटकी और फिर तत्क्षण ही अपने प्राण त्याग दिए। उसे मृत देखकर दरवेशी बड़े निराश और दुःखी हुए। तत्पश्चात् जब उन्हें बोध हुआ तो उन्होंने सोचा कि प्राणी रोगग्रस्त था ही और उसकी मृत्यु भी सन्निकट ही थी। चलो, उसके लिए अच्छा ही हुआ कि बाबा जैसे महान् संत के चरणों में उसे सद्गति प्राप्त हो गई। वह दरवेशियों का ऋणी था और जब वह ऋण चुक गया तो वह स्वतंत्र हो गया और जीवन के अन्त में उसे साई चरणों में सद्गति प्राप्त हुई। **जब कोई प्राणी संतों के चरणों पर अपना मस्तक रखकर प्राण त्याग दे तो उसकी मुक्ति हो जाती है।** पूर्व जन्मों के शुभ संस्कारों के अभाव में ऐसा सुखद अंत प्राप्त होना कैसे संभव है?

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु ।।
।। शुभं भवतु ।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ३२।।

गुरु और ईश्वर की खोज-उपवास अमान्य, बाबा के सरकार इस अध्याय में हेमाड़पंत ने दो विषयों का वर्णन किया है।

(१) किस प्रकार अपने गुरु से बाबा की भेंट हुई और उनके द्वारा ईश्वरदर्शन की प्राप्ति कैसे हुई?
(२) श्रीमती गोखले को जो तीन दिन से उपवास कर रही थीं, उसे पूरनपोली के भोजन कैसे कराया।

प्रस्तावना

श्री. हेमाड़पंत वटवृक्ष का उदाहरण देकर इस गोचर संसार के स्वरुप का वर्णन करते हैं। गीता के अनुसार वटवृक्ष की जड़ें ऊपर और शाखाएँ नीचे को चारों ओर फैली हुई हैं। '' ऊर्ध्वमूलमधःशाखम् '' (गीता पंद्रहवाँ अध्याय, श्लोक १) इस वृक्ष के गुण, पोषक और अंकुर, इंद्रियों के भोग्य पदार्थ हैं। जड़ें जिनका कारणीभूत कर्म हैं, वे सृष्टि के मानवों की ओर फैली हुई हैं। इस वृक्ष की रचना बड़ी ही विचित्र है। न तो इसके आकार, उद्‌गम और अन्त का ही भान होता है और न ही इसके आश्रय का। इस कठोर जड़ वाले संसार रुपी वृक्ष को, वैराग्य के अमोघ शस्त्र द्वारा नष्ट करने के हेतु किसी बाह्य मार्ग का अवलंबन करना अत्यंत आवश्यक है, ताकि इस असार-संसार में आवागमन से मुक्ति प्राप्त हो। इस पथ पर अग्रसर होने के लिए किसी योग्य दिग्दर्शक (गुरु) की नितांत आवश्यकता है। **चाहे कोई कितना ही विद्वान् अथवा वेद और वेदांत में पारंगत क्यों न हो, वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर नहीं पहुँच सकता, जब तक कि उसकी सहायतार्थ कोई योग्य पथप्रदर्शक न मिल जाए, जिसके पदचिह्नों का अनुकरण करने से ही मार्ग में मिलने वाले गह्वरों, खंदकों तथा हिंसक प्राणियों के भय से मुक्त हुआ जा सकता है** और इस विधि से ही संसार-यात्रा सुगम तथा कुशलतापूर्वक पूर्ण हो सकती है। इस विषय में बाबा का अनुभव, जो उन्होंने स्वयं बतलाया, वास्तव में आश्चर्यजनक है। यदि हम उसका ध्यानपूर्वक अनुकरण करेंगे तो हमें निश्चय ही श्रद्धा, भक्ति और मुक्ति प्राप्त होगी।

अन्वेषण

''एक समय हम चार सहयोगी मिलकर धार्मिक एवं अन्य पुस्तकों का अध्ययन कर रहे थे। इस प्रकार प्रबुद्ध होकर हम लोग ब्रह्म के मूलस्वरुप पर विचार करने लगे। एक ने कहा कि हमें स्वयं की ही जागृति करनी चाहिए। दूसरों पर निर्भर रहना हमें उचित नहीं है। इस पर दूसरे ने कहा कि जिसने मनोनिग्रह कर लिया है, वही धन्य है; हमें अपने संकीर्ण विचारों व भावनाओं से मुक्त होना चाहिए, क्योंकि इस संसार में हमारे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। तीसरे ने कहा कि यह संसार सदैव परिवर्त्तनशील है। केवल निराकार ही शाश्वत है। अतः हमें सत्य और असत्य में विवेक करना चाहिए। तब चौथे (स्वयं बाबा) ने कहा कि **केवल पुस्तकीय ज्ञान से कोई लाभ नहीं। हमें तो अपना कर्तव्य करते रहना चाहिए।** दृढ़ विश्वास और पूर्ण निष्ठापूर्वक हमें अपना तन, मन, धन और पंचप्राणादि सर्वव्यापक गुरुदेव को अर्पण कर देना चाहिए। गुरु भगवान् है; सबका पालनहार है।

इस प्रकार वादविवाद के उपरांत हम चारों सहयोगी वन में, ईश्वर की खोज को निकले। हम चार विद्वान् बिना किसी से सहायता लिए केवल अपनी स्वतंत्र बुद्धि से ही ईश्वर की खोज करना चाहते थे। मार्ग में हमें एक बंजारा मिला, जिसने हम लोगों से पूछा कि '' हे सज्जनो! इतनी धूप में आप लोग किस ओर प्रस्थान कर रहे हैं?'' प्रत्युत्तर में हम लोगों ने कहा कि '' वन की ओर!'' उसने पुनः पूछा, '' कृपया यह तो बतलाइए कि वन की ओर जाने का क्या उद्देश्य है?'' हम लोगों ने उसे टालमटोल वाला उत्तर दे दिया। हम लोगों को निरुद्देश्य सघन भयानक जंगलों में भटकते देखकर उसे दया आ गई। तब उसने अति विनम्र होकर हम लोगों से निवेदन किया। '' आप अपनी गुप्त खोज का हेतु चाहे मुझे न बतलाएँ, किन्तु मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि मध्याह्न के प्रचण्ड मार्तण्ड की तीव्र किरणों की उष्णता से आप लोग अधिक कष्ट पा रहे हैं। कृपया यहाँ पर कुछ क्षण विश्राम कर जल-पान कर

लीजिए। आप लोगों को सुहृदय तथा नम्र होना चाहिए। बिना पथ-प्रदर्शक के इस अपरिचित भयानक वन में भटकते फिरने से कोई लाभ नहीं है। यदि आप लोगों की तीव्र इच्छा ऐसी ही है तो कृपया किसी योग्य पथ-प्रदर्शक को साथ ले लें। '' उसकी विनम्र प्रार्थना पर ध्यान न देकर हम लोग आगे बढ़े। हम लोगों ने विचार किया कि हम स्वयं ही अपना लक्ष्य प्राप्त करने में समर्थ हैं, तब फिर हमें किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं है। जंगल बहुत विशाल और पथहीन था। वृक्ष इतने ऊँचे और घने थे कि सूर्य की किरणों का भी वहाँ पहुँच सकना कठिन था। परिणाम यह हुआ कि हम मार्ग भूल गए और बहुत समय तक यहाँ-वहाँ भटकते रहे। भाग्यवश हम लोग उसी स्थान पर पुनःजा पहुँचे, जहाँ से पहले प्रस्थान किया था। तब वही बंजारा हमें पुनः मिला और कहने लगा कि '' अपने चातुर्य पर विश्वास कर आप लोगों को पथ की विस्मृति हो गई है। प्रत्येक कार्य में चाहे वह बड़ा हो या छोटा, मार्ग-दर्शक आवश्यक है। ईश्वर-प्रेरणा के अभाव में सत्पुरुषों से भेंट होना संभव नहीं। **भूखे रहकर कोई कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। इसलिए यदि कोई आग्रहपूर्वक भोजन के लिए आमंत्रित करे तो उसे अस्वीकार ना करो। भोजन तो भगवान का प्रसाद है, उसे ठुकराना उचित नहीं। यदि कोई भोजन के लिए आग्रह करे तो उसे अपनी सफलता का प्रतीक जानों।''** इतना कहकर उसने भोजन करने का पुनः अनुरोध किया। फिर भी हम लोगों ने उसके अनुरोध की उपेक्षा कर भोजन करना अस्वीकार कर दिया। उसके सरल और गूढ़ उपदेशों की परीक्षा किए बिना ही मेरे तीन साथियों ने आगे को प्रस्थान कर दिया। अब पाठक ही अनुमान करें कि वे लोग कितने अहंकारी थे। मैं क्षुधा और तृषा से अत्यंत व्याकुल था ही; बंजारे के अपूर्व प्रेम ने भी मुझे आकर्षित कर लिया। यद्यपि हम लोग अपने को अत्यंत विद्वान् समझते थे, परन्तु दया एवं कृपा किसे कहते हैं, उससे सर्वथा अनभिज्ञ ही थे। बंजारा था तो एक शुद्र, अनपढ़ और गँवार; परन्तु उसके हृदय में महान् दया थी, जिसने बारबार भोजन के लिए आग्रह किया। **जो दूसरों पर निःस्वार्थ प्रेम करते हैं, सचमुच में वे ही महान् हैं।** मैंने सोचा कि इसका आग्रह स्वीकार कर लेना ज्ञान-प्राप्ति के हेतु शुभ आवाहन है और मैंने इसी कारण उसके दिये हुए रुखे-सूखे भोजन को आदर व प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लिया।

क्षुधा-निवारण होते ही क्या देखता हूँ कि गुरुदेव तुरंत ही समक्ष प्रगट हो गए और प्रश्न करने लगे कि ''यह सब क्या हो रहा था?'' घटित घटना मैंने तुरंत ही उन्हें सुना दी। उन्होंने आश्वासन दिया कि **'' मैं तुम्हारे हृदय की समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर दूँगा, परंतु जिसका विश्वास मुझ पर होगा, सफलता केवल उसी को प्राप्त होगी।** मेरे तीनों सहयोगी तो उनके वचनों पर अविश्वास कर वहाँ से चले गये। तब मैंने उन्हें आदरसहित प्रणाम किया और उनकी आज्ञा मानना स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् वे मुझे एक कुएँ के समीप ले गए और रस्सी से मेरे पैर बाँधकर मुझे कुएँ में उलटा लटका दिया। मेरा सिर नीचे और पैर ऊपर को थे। मेरा सिर जल से लगभग तीन फुट की ऊँचाई पर था, जिससे न मैं हाथों के द्वारा जल ही छू सकता था और न मुँह में ही उसके जा सकने की कोई सम्भावना थी। मुझे इस प्रकार उलटा लटका कर वे न जाने कहाँ चले गए। लगभग चार-पाँच घंटों के उपरांत वे लौटे और उन्होंने मुझे शीघ्र ही कुएँ से बाहर निकाला। फिर वे मुझसे पूछने लगे कि तुम्हें वहाँ कैसा प्रतीत हो रहा था? मैंने कहा कि '' मैं परम आनन्द का अनुभव कर रहा था। मेरे समान मूर्ख प्राणी भला ऐसे आनंद का वर्णन कैसे कर सकता है।'' मेरा उत्तर सुन कर मेरे गुरुदेव अत्यंत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने मुझे अपने हृदय से लगाकर मेरी प्रशंसा की और मुझे अपने संग ले लिया। एक चिड़िया अपने बच्चों का जितनी सावधानी से लालन पालन करती है, उसी प्रकार उन्होंने मेरा भी पालन किया। उन्होंने मुझे अपनी शाला में स्थान दिया। कितनी सुन्दर थी वह शाला! वहाँ मुझे अपने माता-पिता की भी विस्मृति हो गई। मेरे अन्य समस्त आकर्षण दूर हो गए और मैंने सरलतापूर्वक बन्धनों से मुक्ति पाई। मुझे सदा ऐसा ही लगता था कि उनके हृदय से ही चिपके रहकर उनकी ओर निहारा करुँ। यदि उनकी भव्य मूर्ति मेरी दृष्टि में न समाती तो मैं अपने को नेत्रहीन होना ही अधिक श्रेयस्कर समझता! ऐसी प्रिय थी वह शाला कि वहाँ पहुँचकर कोई भी कभी खाली हाथ नहीं लौटा। मेरी समस्त निधि, घर, सम्पत्ति, माता ,पिता या क्या कहूँ, वे ही मेरे सर्वस्व थे। मेरी इन्द्रियाँ अपने कर्मो को छोड़कर मेरे नेत्रों में केन्द्रित हो गईं और मेरे नेत्र उन पर। मेरे लिये तो गुरु ऐसे हो चुके थे कि दिन - रात मैं उनके ही ध्यान में निमग्न रहता था। मुझे किसी भी बात की सुध न थी। इस प्रकार ध्यान और चिंतन करते हुये मेरा मन और बुद्धि स्थिर हो गई। मैं स्तब्ध हो गया और उन्हें मानसिक प्रणाम करने लगा। अन्य और भी आध्यात्मिक केंद्र हैं, जहाँ एक भिन्न ही दृश्य देखने में आता हैं। साधक वहाँ ज्ञान प्राप्त करने को जाता है तथा द्रव्य और समय का अपव्यय करता है। कठोर परिश्रम भी करता हैं, परन्तु अन्त में उसे पश्चात्ताप ही हाथ लगता है। वहाँ गुरु अपने गुप्त ज्ञान-भंडार का अभिमान प्रदर्शित करते हैं और अपने को निष्कलंक बतलाते हैं। वे अपनी पवित्रता और शुद्धता का अभिनय तो करते हैं, परन्तु उनके अन्तःकरण में दया लेशमात्र भी नहीं होती है। वे उपदेश अधिक देते हैं और अपनी कीर्ति का स्वयं ही गुणगान करते हैं, परन्तु उनके शब्द हृदयवेधी नहीं होते, इसलिए साधकों को संतोष प्राप्त नहीं होता। जहाँ तक आत्म - दर्शन का प्रश्न है, वे उससे कोसों दूर होते हैं। इस प्रकार के केंद्र साधकों को उपयोगी कैसे सिद्ध हो सकते हैं और उनसे

किसी उन्नति की आशा कोई कहाँ तक कर सकता है? जिन गुर के श्री चरणों का मैंने अभी वर्णन किया है, वे भिन्न प्रकार के ही थे। उनकी कृपा-दृष्टि से मुझे स्वतःही अनुभूति प्राप्त हो गई तथा मुझे न कोई प्रयास और न ही कोई विशेष अध्ययन करना पड़ा। मुझे किसी भी वस्तु के खोजने की आवश्यकता नहीं पड़ी, वरन् प्रत्येक वस्तु मुझे दिन के प्रकाश के समान उज्ज्वल दिखाई देने लगी। केवल मेरे वे गुरु ही जानते हैं कि किस प्रकार उनके द्वारा कुएँ में मुझे उलटा लटकाना मेरे लिए परमानंद का कारण सिद्ध हुआ।

उन चार सहयोगियों में से एक महान् कर्मकांडी था। किस प्रकार कर्म करना और उससे अलिप्त रहना, यह उसे भली भाँति ज्ञात था। दूसरा ज्ञानी था, जो सदैव ज्ञान के अहंकार में चूर रहता था। तीसरा ईश्वर भक्त था जो कि अनन्य भाव से भगवान् के शरणागत् हो चुका था तथा उसे ज्ञात था कि ईश्वर ही कर्त्ता है। जब वे इस प्रकार परस्पर विचार-विनिमय कर रहे थे, तभी ईश्वर सम्बन्धी प्रश्न उठ पड़ा तथा वे बिना किसी से सहायता प्राप्त किए अपने स्वतंत्र ज्ञान पर निर्भर रहकर ईश्वर की खोज में निकल पड़े। श्री साई, जो विवेक और वैराग्य की प्रत्यक्ष मूर्ति थे, उन चारों लोगों में सम्मिलित थे। यहाँ कोई शंका कर सकता है कि जब साई स्वयं ही ब्रह्म के अवतार थे, तब वे उन लोगों के साथ क्यों सम्मिलित हुए और क्यों उन्होंने इस प्रकार अविद्वत्तापूर्ण आचरण किया। जन-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ही उन्होंने ऐसा आचरण किया। स्वयं अवतार होते हुए भी और दृढ़ धारणा कर कि अन्न ही ब्रह्म है, उन्होंने एक क्षुद्र बंजारे के भोजनको सहर्ष स्वीकार कर लिया तथा बंजारे के भोजन के आग्रह की उपेक्षा करने और बिना गुरु के ज्ञान प्राप्त करने वालों की क्या दशा होती है, इसका उनके समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत किया। श्रुति(तैत्तिरीय उपनिषद्) का कथन है कि हमें माता, पिता तथा गुरु का आदरसहित पूजन कर धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए। ये चित्त-शुद्धि के मार्ग हैं और **जब चित्त की शुद्धि नहीं होती, तब तक आत्मानुभूति की आशा व्यर्थ है।** आत्मा इंद्रियों, मन और बुद्धि के परे है। इस विषय में ज्ञान और तर्क हमारी कोई सहायता नहीं कर सकते, केवल गुरु की कृपा से ही सब कुछ सम्भव है। धर्म, अर्थ, और काम की प्राप्ति अपने प्रयत्न से हो सकती है, परन्तु **मोक्ष की प्राप्ति तो केवल गुरुकृपा से ही सम्भव है।** श्री साई के दरबार में तरह-तरह के लोगों का दर्शन होता था। देखो, ज्योतिषी लोग आ रहे हैं और भविष्य का बखान कर रहे हैं। दूसरी ओर राजकुमार, श्रीमान्, सम्पन्न और निर्धन, संन्यासी, योगी और गवैये दर्शनार्थ चले आ रहे हैं। यहाँ तक कि एक अतिशूद्र भी दरबार में आता है और प्रणाम करने के पश्चात् कहता है कि '' साई ही मेरे माँ या बाप हैं और वे मेरा जन्म मृत्यु के चक्र से छुटकारा कर देंगे।'' और भी अनेकों -तमाशा करने वाले, कीर्त्तन करने वाले, अंधे, पंगु, नाथपन्थी, नर्त्तक व अन्य मनोरंजन करने वाले दरबार में आते थे, जहाँ उनका उचित मान किया जाता था और इसी प्रकार उपयुक्त समय पर, वह बंजारा भी प्रगट हुआ और जो अभिनय उसे सौंपा गया था, उसने उसको पूर्ण किया।

हमारे विचार से कुएँ में ४-५ घंटे उलटे लटके रहना - इसे सामान्य नहीं समझना चाहिए, क्योंकि ऐसा कोई बिरला ही पुरुष होगा, जो इस प्रकार अधिक समय तक, रस्सी से लटकाए जाने पर कष्ट का अनुभव न कर परमानंद का अनुभव करे। इसके विपरीत उसे पीड़ा होने की ही अधिक संभावना है। ऐसा प्रतीत होता है कि समाधि-अवस्था का ही यहाँ चित्रण किया गया है। आनंद दो प्रकार के होते हैं- प्रथम ऐन्द्रिक और द्वितीय आध्यात्मिक। ईश्वर ने हमारी इद्रियों व तन मन की प्रवृत्तियों की रचना बाह्यमुखी की है और जब वे (इंद्रियाँ और मन) अपने विषयपदार्थों में संलग्न होती हैं, तब हमें इन्द्रिय-चैतन्यता प्राप्त होती है, जिसके फलस्वरुप हमें सुख या दुःख का पृथक् या दोनों का सम्मिलित अनुभव होता है, न कि परमानंद का। जब इन्द्रियों और मन को उनके विषय पदार्थों से हटाकर अंतर्मुख कर आत्मा पर केन्द्रित किया जाता है, तब हमें आध्यात्मिक बोध होता है और उस समय के आनंद का मुख से वर्णन नहीं किया जा सकता। '' मैं परमानंद में था तथा उस समय का वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ?'' इन शब्दों से ध्वनित होता है कि गुरु ने उन्हें समाधि अवस्था में रखकर चंचल इन्द्रियों और मनरुपी जल से दूर रखा।

उपवास और श्रीमती गोखले

बाबा ने स्वयं कभी उपवास नहीं किया, न ही उन्होंने दूसरों को करने दिया। उपवास करने वालों का मन कभी शांत नहीं रहता, तब उन्हें परमार्थ की प्राप्ति कैसे संभव है? प्रथम आत्मा की तृप्ति होना आवश्यक है। **भूखे रहकर ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती।** यदि पेटमें कुछ अन्न की शीतलता न हो तो हम कौन सी आँख से ईश्वर को देखेंगे, किस जिह्वा से उनकी महानता का वर्णन करेंगे और किन कानों से उसको श्रवण करेंगे। सारांश यह कि जब समस्त इंद्रियों को यथेष्ठ भोजन व शांति मिलती है तथा जब वे बलिष्ठ रहती हैं, तब ही हम भक्ति और ईश्वर-

प्राप्ति की अन्य साधनाएँ कर सकते हैं, इसलिए **न तो हमें उपवास करना चाहिए और न ही अधिक भोजन। भोजन में संयम रखना शरीर और मन दोनों के लिए उत्तम है।**

श्रीमती काशीबाई कानिटकर (श्रीसाईबाबा की एक भक्त) से परिचयपत्र लेकर श्रीमती गोखले, दादा केलकर के समीप शिरड़ी को आईं। वे यह दृढ़ निश्चय कर के आई थीं कि बाबा के श्री चरणों में बैठकर तीन दिन उपवास करुँगी। उनके शिरड़ी पहुँचने के एक दिन पूर्व ही बाबा ने दादा केलकर से कहा कि '' मैं शिमगा(होली) के दिनों में अपने बच्चों को भूखा नहीं देख सकता हूँ। यदि उन्हें भूखे रहना पड़ा तो मेरे यहाँ वर्त्तमान होने का लाभ ही क्या है?'' दूसरे दिन जब वह महिला दादा केलकर के साथ मस्जिद में जाकर बाबा के चरण-कमलों के समीप बैठी तो तुरंत बाबा ने कहा, **''उपवास की आवश्यकता ही क्या है?** दादा भट के घर जाकर पूरनपोली तैयार करो। अपने बच्चों को खिलाओ और स्वयं खाओ। '' वे होली के दिन थे और इस समय श्रीमती केलकर मासिक धर्म से थीं। दादा भट के घर में रसोई बनाने के लिए कोई न था और इसलिए बाबा की युक्ति बड़ी सामयिक थी। श्रीमती गोखले ने दादा भट के घर जाकर भोजन तैयार किया दूसरों को भोजन कराकर स्वयं भी खाया। कितनी सुंदर कथा है और कितनी सुंदर उसकी शिक्षा।

बाबा के सरकार

बाबा ने अपने बचपन की एक कहानी का इस प्रकार वर्णन किया-

जब मैं छोटा था, तब जीविका उपार्जनार्थ मैं बीडगाँव आया। वहाँ मुझे जरी का काम मिल गया और मैं पूर्ण लगन व उम्मीद से अपना काम करने लगा। मेरा काम देखकर सेठ बहुत ही प्रसन्न हुआ। मेरे साथ तीन लड़के और भी काम करते थे। पहले का काम ५० रुपये का, दुसरे का १०० रुपये का और तीसरे का १५० रुपये का हुआ। मेरा काम उन तीनों से दुगुना हो गया। मेरी चतुराई देखकर सेठ बहुत ही प्रसन्न हुआ। वह मुझे अधिक चाहता था और मेरी प्रशंसा भी करता रहता था। उसने मुझे एक पूरी पोशाख प्रदान की, जिसमें सिर के लिए एक पगड़ी और शरीर के लिए एक शेला भी थी। मेरे पास वह पोशाख वैसी ही रखी रही। मैंने सोचा कि जो कुछ मनुष्य-निर्मित है, वह नाशवान् और अपूर्ण है, परन्तु जो कुछ मेरे सरकार द्वारा प्राप्त होगा, वही अन्त तक रहेगा। किसी भी मनुष्य के उपहार की उससे समानता संभव नहीं है। मेरे सरकार कहते हैं '' ले जाओ'' परन्तु लोग मेरे पास आकर कहते हैं '' मुझे दो, मुझे दो।'' जो कुछ मैं कहता हूँ, उसके अर्थ पर कोई ध्यान देने का प्रयत्न नहीं करता। मेरे सरकार का खजाना(आध्यात्मिक भंडार) भरपूर है और वह ऊपर से बह रहा है। मैं तो कहता हूँ कि खोदकर गाड़ी में भरकर ले जाओ। जो सच्ची माँ का लाल होगा, उसे स्वयं ही भरना चाहिये। मेरे फकीर की कला, मेरे भगवान् की लीला और मेरे सरकार का बर्त्ताव सर्वथा अद्वितीय है। मेरा क्या, यह शरीर मिट्टी में मिलकर सारे भूमंडल में व्याप्त हो जायेगा तथा फिर यह अवसर कभी प्राप्त न होगा। मैं चाहे कहीं जाता हूँ या कहीं बैठता हूँ, परन्तु माया फिर भी मुझे कष्ट पहुँचाती है। इतना होने पर भी मैं अपने भक्तों के कल्याणार्थ सदैव उत्सुक ही रहता हूँ। **जो कुछ भी कोई करता है, एक दिन उसका फल उसको अवश्य प्राप्त होगा और जो मेरे इन वचनों को स्मरण रखेगा, उसे मौलिक आनन्द की प्राप्ति होगी।**

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ३३ ।।

उदी की महिमा (१)

बिच्छू का डंक, प्लेक की गाँठ, जामनेर का चमत्कार, नारायण राव, बाला बुवा सुतार, अप्पा साहेब कुलकर्णी, हरीभाऊ कर्णिक।

पूर्व अध्याय में गुरु की महानता का दिग्दर्शन कराया गया है। अब इस अध्याय में उदी के महात्म्य का वर्णन किया जाएगा।

प्रस्तावना

आओ, पहले हम सन्तों के चरणों में प्रणाम करें, जिनकी कृपादृष्टि मात्र से ही समस्त पापसमूह भस्म होकर हमारे आचरण के दोष नष्ट हो जाएँगे। उनसे वार्त्तालाप करना हमारे लिए शिक्षाप्रद और अति आनंददायक है। वेअपने मन में '' **यह मेरा और वह तुम्हारा''** ऐसा कोई भेद नहीं रखते। इस प्रकार के भेदभाव की कल्पना उनके हृदय में कभी भी उत्पन्न नहीं होती। उनका ऋण इस जन्म में तो क्या, अनेक जन्मों में भी न चुकाया जा सकेगा।

उदी(विभूति)

यह सर्वविदित है कि बाबा सबसे दक्षिणा लिया करते थे तथा उस धन राशि में से दान करने के पश्चात् जो कुछ भी शेष बचता, उससे वे ईधन मोल लेकर सदैव धूनी प्रज्वलित रखते थे। इसी धूनी की भस्म ही 'उदी' कहलाती है। भक्तों के शिरड़ी से प्रस्थान करते समय यह भस्म मुक्तहस्त से उन सभी को वितरित कर दी जाती थी।

इस उदी से बाबा हमें क्या शिक्षा देते हैं? उदी वितरण कर बाबा हमें शिक्षा देते हैं कि इस अंगारे की नाईं गोचर होने वाले ब्रह्मांड का प्रतिबिम्ब भस्म के ही समान है। हमारा तन भी ईंधन सदृश ही है, अर्थात् पंचभूतादि से निर्मित है, जो कि सांसारिक भोगादि के उपरांत विनाश को प्राप्त होकर भस्म के रुप में परिणत हो जाएगा।

भक्तों को इस बात की स्मृति दिलाने के हेतु ही कि अन्त में यह देह भस्म सदृश होने वाला है, बाबा उदी वितरण किया करते थे। बाबा इस उदी के द्वारा एक और भी शिक्षा प्रदान करते हैं कि इस संसार में ब्रह्म ही सत्य और जगत् मिथ्या है। इस संसार में वस्तुतः कोई किसी का पिता, पुत्र अथवा स्त्री नहीं है। हम जगत् में अकेले ही आए हैं और अकेले ही जाएँगे। पूर्व में यह देखने में आ चुका है और अभी भी अनुभव किया जा रहा है कि इस उदी ने अनेक शारीरिक और मानसिक रोगियों को स्वास्थ्य प्रदान किया है। यथार्थ में बाबा तो भक्तों को दक्षिणा और उदी द्वारा सत्य और असत्य में विवेक तथा असत्य के त्याग का सिद्धांत समझाना चाहते थे। इस उदी से वैराग्य और दक्षिणा से त्याग की शिक्षा मिलती है। इन दोनों के अभाव में इस मायारुपी भवसागर को पार करना कठिन है; इसलिए बाबा दूसरे के भोग स्वयं भोग कर दक्षिणा स्वीकार कर लिया करते थे। जब भक्तगण बिदा लेते, तब वे प्रसाद के रुप में उदी देकर और कुछ उनके मस्तक पर लगाकर अपना वरद-हस्त उनके मस्तक पर रखते थे। जब बाबा प्रसन्न चित्त होते, तब वे प्रेमपूर्वक गीत गाया करते थे। ऐसा ही एक भजन उदी के सम्बन्ध में भी है। भजन के बोल हैं, '' रमते राम आओ जी आओ जी, उदिया की गोनियाँ लाओजी।'' यह बाबा शुद्ध और मधुर स्वर में गाते थे।

यह सब तो उदी के आध्यात्मिक प्रभाव के सम्बन्ध में हुआ, परन्तु उसमें भौतिक प्रभाव भी था, जिससे भक्तों को स्वास्थ्य, समृद्धि, चिंतामुक्ति एवं अनेक सांसारिक लाभ प्राप्त हुए। इसलिए उदी हमें आध्यात्मिक और सांसारिक लाभ पहुँचाती है। अब हम उदी की कथाएँ प्रारम्भ करते हैं।

बिच्छु का डंक

नासिक के श्री. नारायण मोतीराम जानी बाबा के परम भक्त थे। वे बाबा के अन्य भक्त रामचंद्र वामन मोड़क के अधीन काम करते थे। एक बार वे अपनी माता के साथ शिरड़ी गए तथा बाबा के दर्शन का लाभ उठाया। तब बाबा ने उनकी माँ से कहा कि '' अब तुम्हारे पुत्र को नौकरी छोड़कर स्वतंत्र व्यवसाय करना चाहिए।'' कुछ दिनों में बाबा के वचन सत्य निकले। नारायण जानी ने नौकरी छोड़कर एक उपाहार गृह 'आनंदाश्रम' चलाना प्रारम्भ कर दिया, जो अच्छी तरह चलने लगा। एक बार नारायण राव के एक मित्र को बिच्छू ने काट लिया, जिससे उसे असहनीय पीड़ा होने लगी। ऐसे प्रसंगों में उदी तो रामबाण प्रसिद्ध ही है। काटने के स्थान पर केवल उसे लगा ही तो देना है। नारायण ने उदी खोजी, परन्तु कही न मिल सकी। उन्होंने बाबा के चित्र के समक्ष खड़े होकर उनसे सहायता की प्रार्थना की और उनका नाम लेते हुए, उनके चित्र के सम्मुख जलती हुई ऊदबत्ती में से एक चुटकी भस्म बाबा की उदी मानकर बिच्छू के डंक मारने के स्थान पर लेप कर दिया। वहाँ से उनके हाथ हटाते ही पीड़ा तुरंत मिट गई और दोनों अति प्रसन्न होकर चले गए।

प्लेग की गाँठ

एक समय एक भक्त बाँद्रा में था। उसे वहाँ पता चला कि उसकी लड़की, जो दूसरे स्थान पर है, प्लेगग्रस्त है और उसे गिल्टी निकल आई है। उनके पास उस समय उदी नहीं थी, इसलिए उन्होंने नाना चाँदोरकर के पास उदी भेजने के लिए सूनचा भेजी। नानासाहेब ठाणे रेल्वे स्टेशन के समीप ही रास्ते में थे। जब उनके पास यह सूचना पहुँची, वे अपनी पत्नीसहित कल्याण जा रहे थे। उनके पास भी उस समय उदी नहीं थी। इसलिए उन्होंने सड़क पर से कुछ धूल उठाई और श्री साईबाबा का ध्यान कर उनसे सहायता की प्रार्थना की तथा उस धूल को अपनी पत्नी के मस्तक पर लगा दिया। वह भक्त खड़े-खड़े यह सब नाटक देख रहा था। जब वह घर लौटा तो उसे जानकर अति हर्ष हुआ कि जिस समय से नानासाहेब ने ठाणे रेल्वे स्टेशन के पास बाबा से सहायता करने की प्रार्थना की , तभीसे उनकी लड़की की स्थिति में पर्याप्त सुधार हो चला था, जो गत तीन दिनों से पीड़ित थी।

जामनेर का विलक्षण चमत्कार

सन् १९०४-०५ में नानासाहेब चाँदोरकर खानदेश जिले के जामनेर में मामलतदार थे। जामनेर शिरड़ी से लगभग १०० मील से भी अधिक दूरी पर है। उनकी पुत्री मैनाताई गर्भावस्था में थी और प्रसव काल समीप ही था। उसकी स्थिति अति गम्भीर थी। २-३ दिनों से उसे प्रसव-वेदना हो रही थी। नानासाहेब ने सभी संभव प्रयत्न किए, परन्तु वे सब व्यर्थ ही सिद्ध हुए। तब उन्होंने बाबा का ध्यान किया और उनसे सहायता की प्रार्थना की। उस समय शिरड़ी में एक रामगीर बुवा, जिन्हें बाबा बापूगीर बुवा के नाम से पुकारते थे, अपने घर खानदेश को लौट रहे थे। बाबा ने उन्हें अपने समीप बुलाकर कहा कि तुम घर लौटते समय थोड़ी देर के लिए जामनेर में उतरकर यह उदी और आरती श्री. नानासाहेब को दे देना। रामगीर बुवा बोले कि '' मेरे पास केवल दो ही रुपए हैं, जो कठिनाई से जलगाँव तक के किराये को ही पर्याप्त होंगे। फिर ऐसी स्थिति में जलगाँव से और ३० मील आगे जाना मुझे कैसे संभव होगा?'' बाबा ने उत्तर दिया कि '' चिंता की कोई बात नहीं। तुम्हारी सब व्यवस्था हो जाएगी।'' तब बाबा ने शामा से माधव अड़कर द्वारा रचित प्रसिद्ध आरती की प्रतिलिपि कराई और उदी के साथ नानासाहेब के पास भेज दी। बाबा के वचनों पर विश्वास कर रामगीर बुवा ने शिरड़ी से प्रस्थान कर दिया और पौने तीन बजे रात्रि को जलगाँव पहुँचे। इस समय उनके पास केवल दो आने ही शेष थे, जिससे वे बड़ी दुविधा में थे। इतने में ही एक आवाज उनके कानों में पड़ी कि '' शिरड़ी से आए हुए बापूगीर बुवा कौन हैं?'' उन्होंने आगे बढ़कर बतलाया कि '' मैं ही शिरड़ी से आ रहा हूँ और मेरा ही नाम बापूगीर बुवा है।'' उस चपरासी ने, जो कि अपने आपको नानासाहेब चाँदोरकर द्वारा भेजा हुआ बतला रहा था, उन्हें बाहर लाकर एक शानदार ताँगे में बिठाया, जिसमें दो सुन्दर घोड़े जुते हुए थे। अब वे दोनों रवाना हो गए। ताँगा बहुत वेग से चल रहा था। प्रातःकाल वे एक नाले के समीप पहुँचे, जहाँ ताँगेवाले ने ताँगा रोककर घोड़ों को पानी पिलाया। इसी बीच चपरासी ने रामगीर बुवा से थोड़ा सा नाश्ता करने को कहा। उसकी दाढ़ी-मूछें तथा अन्य वेशभूषा से उसे मुसलमान समझकर उन्होंने जलपान करना अस्वीकार कर दिया। तब उस चपरासी ने कहा कि मैं गढ़वाल का क्षत्रिय वंशी हिन्दू हूँ। यह सब नाश्ता नानासाहेब ने आपके लिए ही भेजा है तथा इसमें आपको कोई आपत्ति और संदेह नहीं करना चाहिए। तब वे दोनों जलपान कर पुनः रवाना हुए और सूर्योदय काल में जामनेर पहुँच गए। रामगीर बुवा लघुशंका को गए और थोड़ी देर में जब वे लौटकर आए तो क्या देखते हैं कि वहाँ न तो ताँगा था, न ताँगेवाला और न ही ताँगे के घोड़े। उनके मुख से एक शब्द भी न निकल रहा था। वे समीप ही कचहरी में पूछताछ करने गए और वहाँ उन्हें पता चला कि इस समय मामलतदार घर पर ही हैं। वे नानासाहेब के घर गए और उन्हें बतलाया कि''मैं शिरड़ी से बाबा की आरती और उदी लेकर आ रहा हूँ।'' उस समय मैनाताई की स्थिति बहुत ही गंभीर थी और सभी को उसके लिए बड़ी चिंता थी।

नानासाहेब ने अपनी पत्नी को बुलाकर उदी को जल में मिलाकर अपनी लकड़ी को पिला देने और आरती करने को कहा। उन्होंने सोचा कि बाबा की सहायता बड़ी सामायिक है। थोड़ी देर में ही समाचार प्राप्त हुआ कि प्रसव कुशलतापूर्वक होकर समस्त पीड़ा दूर हो गई है। जब रामगीर बुवा ने नानासाहेब को चपरासी, ताँगा तथा जलपान आदि रेलवे स्टेशन पर भेजने के लिए धन्यवाद दिया तो नानासाहेब को यह सुनकर महान् आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि मैंने न तो कोई ताँगा या चपरासी ही भेजा था और न ही मुझे शिरड़ी से आपके पधारने की कोई पूर्वसूचना ही थी।

ठाणे के सेवानिवृत्त श्री.बी.व्ही. देव ने नानासाहेब चाँदोरकर के पुत्र बापूसाहेब चाँदोरकर और शिरड़ी के रामगीर बुवा से इस सम्बन्ध में बड़ी पूछताछ की और फिर संतुष्ट होकर श्री साईलीला पत्रिका, भाग १३(पृष्ठ नं ११,१२,१३) में गद्य और पद्य में एक सुन्दर रचना प्रकाशित की। श्री. बी.व्ही. नरसिंह स्वामी ने भी (१) मैनाताई (भाग ५,पृष्ठ १४) , (२) बापूसाहेब चाँदोरकर (भाग २०, पृष्ठ ५० और ३) रामगीर बुवा (भाग २७, पृष्ठ ८३) के कथन लिए हैं, जो कि क्रमशः १ जून १९३६, १६ सितम्बर १९३६ और १ दिसम्बर १९३६ को छपे हैं और यह सब उन्होंने अपनी पुस्तक '' भक्तों के अनुभव'' भाग ३ में प्रकाशित किए हैं। निम्नलिखित प्रसंग रामगीर बुवा के कथनानुसार उद्धृत किया जाता है।

'' एक दिन मुझे बाबा ने अपने समीप बुलाकर एक उदी की पुड़िया और एक आरती की प्रतिलिपि देकर आज्ञा दी कि जामनेर जाओ और यह आरती तथा उदी नानासाहेब को दे दो। मैंने बाबा को बताया कि मेरे पास केवल दो रुपये ही हैं, जो कि कोपरगाँव से जलगाँव जाने और फिर वहाँ से बैलगाड़ी द्वारा जामनेर जाने के लिए अपर्याप्त हैं। बाबा ने कहा '' अल्ला देगा। '' शुक्रवार का दिन था। मैं शीघ्र ही रवाना हो गया । मैं मनमाड ६-३० बजे सायंकाल और जलगाँव रात्रि को २ बजकर ४५ मिनट पर पहुँचा । उस समय प्लेग निवारक आदेश जारी थे , जिससे मुझे असुविधा हुई और मैं सोच रहा था कि कैसे जामनेर पहुँचूँ। रात्रि को ३ बजे एक चपरासी आया, जो पैर में बूट पहिने था, सिर पर पगड़ी बाँधे व अन्य पोशाक भी पहने था। उसने मुझे ताँगे में बिठा लिया और ताँगा चल पड़ा। मैं उस समय भयभीत-सा हो रहा था। मार्ग में भगूर के समीप मैंने जलपान किया। जब प्रातःकाल जामनेर पहुँचा, तब उसी समय मुझे लघुशंका करने की इच्छा हुई । जब मैं लौटकर आया, तब देखा कि वहाँ कुछ भी नहीं है। ताँगा और ताँगेवाला अदृश्य हैं। ''

नारायणराव

भक्त नारायणराव को बाबा के दर्शनों का तीन बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। सन् १९१८ में बाबा के महासमाधि लेने के तीन वर्ष पश्चात शिरड़ी जाना चाहते थे, परन्तु किसी कारणवश उनका जाना न हो सका। बाबा के समाधिस्थ होने के एक वर्ष के भीतर ही वे रुग्ण हो गये। किसी भी उपचार से उन्हें लाभ न हुआ। तब उन्होंने आठों प्रहर बाबा का ध्यान करना प्रारंभ कर दिया। एक रात को उन्हें स्वप्न हुआ। बाबा एक गुफा में से उन्हें आते हुए दिखाई पड़े और सांत्वना देकर कहने लगे कि '' घबड़ाओ नहीं, तुम्हें कल से आराम हो जाएगा और एक सप्ताह में ही चलने-फिरने लगोगे ।'' ठीक उतने ही समय में नारायणराव स्वस्थ हो गए। अब यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या बाबा देहधारी होने से जीवित कहलाते थे और क्या उन्होंने देह त्याग दी, इसलिए मृत हो गए? नहीं। बाबा अमर हैं, क्योंकि वे जीवन और मृत्यु से परे हैं। **एक बार भी अनन्य भाव से जो उनकी शरण में जाता है, वह कहीं भी हो, उसे वे सहायता पहुँचाते हैं। वे तो सदा हमारे बाजू में ही खड़े हैं और चाहे जैसा रुप लेकर भक्त के समक्ष प्रकट होकर उसकी इच्छा पूर्ण कर देते हैं।**

अप्पासाहेब कुलकर्णी

सन् १९१७ में अप्पासाहेब कुलकर्णी के शुभ दिन आए। उनका ठाणे को स्थानांतरण हो गया। उन्होंने बालासाहेब भाटे द्वारा प्राप्त बाबा के चित्र का पूजन करना आरम्भ कर दिया । उन्होंने सच्चे हृदय से पूजा की। वे हर दिन फूल, चन्दन और नैवद्य बाबा को अर्पित करते और उनके दर्शनों की बड़ी अभिलाषा रखते थे। इस सम्बन्ध में इतना तो कहा जा सकता है कि **भावपूर्वक बाबा के चित्र को देखना ही बाबा के प्रत्यक्ष दर्शन के सदृश है।** नीचे लिखी कथा से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

बालाबुवा सुतार

बम्बई में एक बालाबुवा नाम के संत थे, जो कि अपनी भक्ति, भजन और आचरण के कारण ' आधुनिक तुकाराम' के नाम से विख्यात थे। सन् १९१७ में वे शिरड़ी आए। जब उन्होंने बाबा को प्रणाम किया तो बाबा कहने लगे कि मैं तो इन्हें चार वर्षो से जानता हूँ, बालाबुवा को आश्चर्य हुआ और उन्होंने सोचा कि मैं तो प्रथम बार ही शिरड़ी आया हूँ, फिर यह कैसे संभव हो सकता है? गहन चिन्तन करने पर उन्हें स्मरण हुआ कि चार वर्ष पूर्व उन्होंने बम्बई में बाबा के चित्र को नमस्कार किया था। उन्हें बाबा के शब्दों की यथार्थता का बोध हो गया और वे मन ही मन कहने लगे कि संत कितने सर्वव्यापक और सर्वज्ञानी होते हैं तथा अपने भक्तों के प्रति उनके हृदयमें कितनी दया होती है। मैंने तो केवल उनके चित्र को ही नमस्कार किया था तो भी यह घटना उनको ज्ञात हो गई। इसलिए उन्होंने मुझे इस बात का अनुभव कराया है कि **उनके चित्र को देखना ही उनके दर्शन करने के सदृश है।**

अब हम अप्पासाहेब की कथा पर आते हैं। जब वे ठाणे में थे तो उन्हें भिवंडी दौरे पर जाना पड़ा, जहाँ से उन्हें एक सप्ताह में लौटना संभव न था। उनकी अनुपस्थिति में तीसरे दिन उनके घर में निम्नलिखित विचित्र घटना हुई। दोपहर के समय अप्पासाहेब के गृह पर एक फकीर आया, जिसकी आकृति बाबा के चित्र से ही मिलती-जुलती थी। श्रीमती कुलकर्णी तथा उनके बच्चों ने उनसे पूछा कि आप शिरड़ी के श्रीसाईबाबा तो नहीं हैं? इस पर उत्तर मिला कि वे तो साईबाबा के आज्ञाकारी सेवक हैं और उनकी आज्ञा से ही आप लोगों की कुशल-क्षेम पूछने यहाँ आए हैं। फकीर ने दक्षिणा माँगी तो श्रीमती कुलकर्णी ने उन्हें एक रुपया भेंट किया। तब फकीर ने उन्हें उदी की एक पुड़िया देते हुए कहा कि इसे अपने पूजन में चित्र के साथ रखो । इतना कहकर वह वहाँ से चला गया। अब बाबा की अद्‌भुत लीला सुनिए।

भिवंडी में अप्पासाहेब का घोड़ा बीमार हो गया, जिससे वे दौरे पर आगे न जा सके। तब उसी शाम को वे घर लौट आए। घर आने पर उन्हें पत्नी के द्वारा फकीर के आगमन का समाचार प्राप्त हुआ। उन्हें मन में थोड़ी अशांति-सी हुई कि मैं फकीर के दर्शनों से वंचित रह गया तथा पत्नी द्वारा केवल एक रुपया दक्षिणा देना उन्हें अच्छा न लगा । वे कहने लगे कि यदि मैं उपस्थित होता तो १० रुपये से कम कभी न देता । तब वे फिर भूखे ही फकीर की खोज में निकल पड़े। उन्होंने मस्जिद एवं अन्य कई स्थानों पर खोज की, परन्तु उनकी खोज व्यर्थ ही सिद्ध हुई । पाठक अध्याय ३२ में कहे गए बाबा के वचनों का स्मरण करें कि **भूखे पेट ईश्वर की खोज नहीं करनी चाहिए।** अप्पासाहेब को शिक्षा मिल गई। वे भोजन के उपरांत जब अपने मित्र श्री. चित्रे के साथ घूमने को निकले, तब थोड़ी ही दूर जाने पर उन्हें सामने से एक फकीर द्रुत गति से आता हुआ दिखाई पड़ा। अप्पासाहेब ने सोचा कि यह तो वही फकीर प्रतीत होता है, जो मेरे घर पर आया था तथा उसकी आकृति भी बाबा के चित्र के अनुरुप ही है। फकीर ने तुरत्न ही हाथ बढाकर दक्षिणा माँगी। अप्पासाहेब ने उन्हें एक रुपया दे दिया, तब वह और माँगने लगा। अब अप्पासाहेब ने दो रुपए दिए। तब भी उसे संतोष न हुआ। उन्होंने अपने मित्र चित्रे से ३ रुपये उधार लेकर दिए, फिर भी वह माँगता ही रहा। तब अप्पासाहेब ने उसे घर चलने को कहा। सब लोग घर पर आए और अप्पासाहेब ने उन्हें ३ रुपये और दिए अर्थात् कुल ९ रुपये; फिर भी वह असन्तुष्ट प्रतीत होता था और माँगे ही जा रहा था। तब अप्पासाहेब ने कहा कि मेरे पास तो १० रुपये का नोट है। तब फकीर ने नोट ले लिया और ९ रुपये लौटाकर चला गया। अप्पासाहेब ने १० रुपये देने को कहा था, इसलिए उनसे १० रुपये ले लिए और बाबा द्वारा स्पर्शित ९ रुपये उन्हें वापस मिल गये। अंक ९ रुपये अर्थपूर्ण हैं तथा नवविधा भक्ति की और इंगित करते हैं (देखो अध्याय २१) । यहाँ ध्यान दें कि लक्ष्मीबाई को भी उन्होंने अंत समय में ९ रुपये ही दिए थे।

उदी की पुड़िया खोलने पर अप्पासाहेब ने देखा कि उसमें फूल के पत्ते और अक्षत हैं। जब वे कालान्तर में शिरड़ी गए तो उन्हें बाबा ने अपना एक केश भी दिया। उन्होंने उदी और केश को एक ताबीज में रखा और उसे वे सदैव हाथ पर बाँधते थे। अब अप्पासाहेब को उदी की शक्ति विदित हो चुकी थी। वे कुशाग्र बुद्धि के थे। प्रथम उन्हें ४० रुपये मासिक मिलते थे, परंतु बाबा की उदी और चित्र प्राप्त होने के पश्चात् उनका वेतन कई गुना हो गया तथा उन्हें मान और यश भी मिला । इन अस्थायी आकर्षणों के अतिरिक्त उनकी आध्यात्मिक प्रगति भी शीघ्रता से होने लगी। इसलिए **सौभाग्यवश जिनके पास उदी है, उन्हें स्नान करने के पश्चात् मस्तक पर धारण करना चाहिए और कु छ जल में मिलाकर वह तीर्थ की तरह ग्रहण करना चाहिए।**

हरीभाऊ कर्णिक

सन् १९१७ में गुरु पूर्णिमा के शुभ दिन डहाणू, जिला ठाणे के हरीभाऊ कर्णिक शिरड़ी आए तथा उन्होंने बाबा का यथाविधि पूजन किया। उन्होंने वस्तुएँ और दक्षिणा आदि भेंट कर शामा के द्वारा बाबा से लौटने की आज्ञा प्राप्त की। वे मस्जिद की सीढ़ियों पर से उतरे ही थे कि उन्हें विचार आया कि एक रुपया और बाबा को अर्पण करना चाहिए। वे शामा को संकेत से यह सूचना देना चाहते थे कि बाबा से जाने की आज्ञा प्राप्त हो चुकी है, इसलिए मैं लौटना नहीं चाहता हूँ । परन्तु शामा का ध्यान उनकी ओर नहीं गया, इसलिए वे घर को चल पड़े। मार्ग में वे नासिक में श्री कालाराम के मंदिर में दर्शनों को गए। संत नरसिंह महाराज, जो कि मंदिर के मुख्य द्वार के भीतर बैठा करते थे, भक्तों को वहीं छोड़ कर हरीभाऊ के पास आए और उनका हाथ पकडकर कहने लगे कि '' मुझे मेरा रुपया दे दो।'' कर्णिक को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने सहर्ष रुपया दे दिया । उन्हें विचार आया कि मैंने बाबा को रुपया देने का मन में संकल्प किया था और बाबा ने यह रुपया नासिक के नरसिंह महाराज के द्वारा ले लिया। इस कथा से सिद्ध होता है कि **सब संत अभिन्न हैं तथा वे किसी न किसी रुप में एक साथ ही कार्य किया करते हैं।**

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ३४ ।।

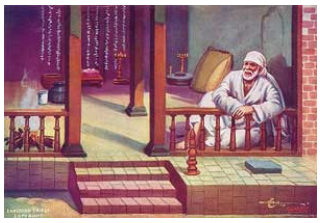

उदी की महिमा (२)

(१) डॉक्टर का भतीजा (२) डॉक्टर पिल्ले (३) शामा की भयाहू (४) ईरानी कन्या, (५) हरदा के महानुभाव (६) बम्बई की महिला की प्रसव पीड़ा

इस अध्याय में भी उदी की ही महत्ता क्रमबद्ध है तथा उन घटनाओं का भी उल्लेख किया गया है, जिनमें उसका उपयोग बहुत ही प्रभावकारी सिद्ध हुआ।

डॉक्टर का भतीजा

नासिक जिले के मालेगाँव में एक डॉक्टर रहते थे। उनका भतीजा एक असाध्य रोग Tubercular bone abscess (एक प्रकार का तपेदिक) से पीड़ित था। उन्होंने तथा उनके सभी डॉक्टर मित्रों ने समस्त उपचार किए। यहाँ तक कि उसकी शल्य-चिकित्सा भी कराई, फिर भी बालक को कोई लाभ न हुआ। उसके कष्टों का पारावार न था। मित्र और सम्बन्धियों ने बालक के माता-पिता को दैविक उपचार करने का परामर्श देकर श्री साईबाबा की शरण में जाने को कहा, जो अपनी दृष्टि मात्र से असाध्य रोग साध्य करने के लिए प्रसिद्ध हैं। अतः माता-पिता बालक को साथ लेकर शिरड़ी आए। उन्होंने बाबा को साष्टांग प्रणाम कर श्री-चरणों में बालक को डाल दिया और बड़ी नम्रता तथा आदरपूर्वक विनती की कि '' प्रभु, हम लोगों पर दया करो। आपका ' संकट-मोचन' नाम सुनकर ही हम लोग यहाँ आए हैं। दया कर इस बालक की रक्षा कीजिए। प्रभु ! हमें तो केवल आपका ही भरोसा हैं ।'' प्रार्थना सुनकर बाबा को दया आ गई और उन्होंने सान्त्वना देकर कहा कि **'' जो इस मस्जिद की सीढी चढ़ता है, उसे जीवनपर्यन्त कोई दुःख नहीं होता। चिंता न करो; यह उदी ले उस रोग ग्रसित स्थान पर लगाओ। ईश्वर पर विश्वास रखो, वह सप्ताह के अंत में ही पूर्ण स्वस्थ हो जाएगा । यह मस्जिद नहीं, यह तो द्वारकावती है और जो इसकी सीढ़ी चढ़ेगा, उसे स्वास्थ्य और सुख की प्राप्ति होगी तथा उसके कष्टों का अंत हो जाएगा।''** बालक को बाबा के सामने बिठलाया गया। वे उस रोगग्रस्त स्थान पर अपना हाथ फेरते हुए दयापूर्ण दृष्टि से बालक की ओर निहारने लगे। रोगी अब प्रसन्न रहने लगा और उदी के लेप से बालक थोड़े समय में ही स्वस्थ हो गया। माता-पिता अपने को बाबा का ऋणी और कृतज्ञ मानकर बालक को लेकर शिरड़ी से चले गए।

यह लीला देखकर बालक के काका को, जो डॉक्टर थे, महान् आश्चर्य हुआ तथा उन्हें भी बाबा के दर्शनों की तीव्र उत्कंठा हुई। इसी समय जब वे कार्यवश बम्बई जा रहे थे, तभी मालेगाँव और मनमाड़ के निकट किसी ने बाबा के विरुद्ध उनके कान भर दिए, इस कारण वे शिरड़ी जाने का विचार त्याग कर सीधे बम्बई चले गए। वे अपनी शेष छुट्टियाँ अलीबाग में व्यतीत करना चाहते थे, परंतु बम्बई में उन्हें लगातार तीन रात्रियों तक एक ही ध्वनि सुनाई पड़ी कि '' क्या अब भी तुम मुझपर अविश्वास कर रहे हो ?'' तब डॉक्टर ने अपना विचार बदल कर शिरड़ी को प्रस्थान करने का निश्चय किया । बम्बई में उनके एक रोगी को सांसर्गिक ज्वर आ रहा था, जिसका तापक्रम कम होने का कोई लक्षण दिखाई न देने के कारण उन्हें ऐसा लग रहा था कि कहीं शिरड़ी की यात्रा स्थगित न करनी पड़े। उन्होंने अपने मन ही मन एक परीक्षा करने का विचार किया कि यदि रोगी आज अच्छा हो जाये तो कल ही मैं शिरड़ी के लिए प्रस्थान कर दूँगा। आश्चर्य है कि जिस समय उन्होंने यह निश्चय किया, ठीक उसी समय से ज्वर में उतार होने लगा और ताप क्रमशः साधारण स्थिति पर पहुँच गया। तब वे अपने निश्चयानुसार शिरड़ी पहुँचे और बाबा का दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया। बाबा ने उन्हें कुछ ऐसे अनुभव दिए कि वे सदा के लिए उनके भक्त हो गये। डॉक्टर वहाँ चार दिन ठहरे और उदी तथा आशीर्वाद प्राप्त कर घर वापस आ गए। एक पखवारे में ही पदोन्नति पाकर उनका स्थानान्तरण वीजापुर को हो गया। भतीजे की रोग-मुक्तता ने उन्हें बाबा के दर्शनों का सौभाग्य दिया तथा शिरड़ी की यात्रा ने उनकी श्रीसाई के चरणों मे प्रगाढ़ प्रीति उत्पन्न कर दी।

डॉक्टर पिल्ले

डॉक्टर पिल्ले बाबा के एकनिष्ठ भक्त थे । इसी कारण वे उन पर अधिक स्नेह रखते थे और उन्हें सदा 'भाऊ' कहकर पुकारते तथा हर समय उनसे वार्त्तालाप करके प्रत्येक विषय में परामर्श भी लिया करते थे। उनकी सदैव यही इच्छा रहती कि वे बाबा के समीप ही बने रहें। एक बार डॉक्टर पिल्ले को नासूर हो गया । वे काकासाहेब दीक्षित से बोले कि मुझे असह्य पीड़ा हो रही है और मैं अब इस जीवन से मृत्यु को अधिक श्रेयस्कर समझता हूँ। मुझे ज्ञात है कि इसका मुख्य कारण मेरे पूर्व जन्मों के कर्म ही हैं। जाकर बाबा से कहो कि वे मेरी यह पीड़ा अब दूर करें । मैं अपने पिछले जन्म के कर्मो को अगले दस जन्मों में भोगने को तैयार हूँ । तब काका दीक्षित ने बाबा के पास जाकर उनकी प्रार्थना सुनाई । साई तो दया के अवतार ही हैं। वे अपने भक्तों के कष्ट कैसे देख सकते थे? उनकी प्रार्थना सुनकर उन्हें भी दया आ गई और उन्होंने दीक्षित से कहा कि पिल्ले से जाकर कहो कि घबराने की ऐसी कोई बात नहीं । कर्मो का फल दस जन्मों में क्यों भुगतना पड़ेगा? केवल दस दिनों में ही गत जन्मों के कर्मफल समाप्त हो जाएँगे। मैं तो यहाँ तुम्हें धार्मिक और आध्यात्मिक कल्याण देने के लिए ही बैठा हूँ । **प्राण त्यागने की इच्छा कदापि न करनी चाहिए।** जाओ, किसी की पीठ पर लादकर उन्हें यहाँ ले आओ, मैं सदा के लिये उनका कष्टों से छुटकारा कर दूँगा।

तब उसी स्थिति में पिल्ले को वहाँ लाया गया। बाबा ने अपने दाहिनी ओर उनके सिरहाने अपनी गादी देकर सुख से लिटाकर कहा कि इसकी मुख्य औषधि तो यह है कि पिछले जन्मों के कर्मफल को अवश्य ही भोग लेना चाहिए, ताकि उनसे सदैव के लिए छुटकारा हो जाए। हमारे कर्म ही सुख दुःख कें कारण होते हैं, इसलिए जैसी भी परिस्थिति आए, उसी में सन्तोष करना चाहिए। अल्ला ही सब को फल देने वाला है और वही सबका रक्षण करता है। ऐसा विचार कर सदैव उनका ही स्मरण करो। वे ही तुम्हारी चिन्ता दूर करेंगे। तन-मन-धन और वचन द्वारा उनकी अनन्य शरण में जाओ, फिर देखो कि वे क्या करते हैं। डॉक्टर पिल्ले ने कहा कि नानासाहेब ने मेरे पैर में एक पट्टी बाँधी है, परन्तु मुझे उससे कोई लाभ नहीं पहुँचा । '' नाना तो मूर्ख है'' बाबा ने कहा, '' वह पट्टी हटाओ, नहीं तो मर जाओगे । थोड़ी देर में ही एक कौआ आएगा और वह अपनी चोंच इसमें मारेगा। तभी तुम शीघ्र अच्छे हो जाओगे।''

जब यह वार्त्तालाप हो ही रहा था कि उसी समय अब्दुल, जो मस्जिद में झाड़ू लगाने तथा दिया-बत्ती आदि स्वच्छ करने का कार्य करता था, वहाँ आया । जब वह दिया -बत्ती स्वच्छ कर रहा था तो अचानक ही उसका पैर डॉक्टर पिल्ले के नासूर वाले पर पड़ा। पैर तो सूजा हुआ था ही और फिर अब्दुल के पैर से दबा तो उसमें से नासूर के सात कीड़े बाहर निकल पड़े। कष्ट असहनीय हो गया और डॉक्टर पिल्ले उच्च स्वर में चिल्ला पड़े। किन्तु कुछ काल के ही पश्चात् वे शांत हो कर गीत गाने लगे । तब बाबा ने कहा,

''देखा, भाऊ अब अच्छा हो गया है और गाना गा रहा है।'' गाने के बोल थेः-

करम कर मेरे हाल पर तू करीम।
तेरा नाम रहमान है और रहीम।
तू ही दोनों आलम का सुलतान है।
जहाँ में नुमायाँ तेरी शान है।
फना होने वाला है सब कारोबार।
रहे नूर तेरा सदा आशकार ।
तू आशिक का हरदम मददगार है।

फिर डॉक्टर पिल्ले ने पूछा कि '' वह कौआ कब आएगा और चोंच मारेगा?'' बाबा ने कहा ''अरे, क्या तुमने कौए को नहीं देखा? अब वह नहीं आयेगा। अब्दुल, जिसने तुम्हारा पैर दबाया, वही कौआ था। उसने चोंच मारकर नासूर को हटा दिया । वह अब पुनः क्यों आएगा? अब जाकर वाड़े में विश्राम करो। तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओगे।'' उदी लगाने और पानी के संग पीने से बिना किसी औषधि या चिकित्सा के वे दस दिनों में ही नीरोग हो गए, जैसा कि बाबा ने उनसे कहा था।

शामा के छोटे भाई की पत्नी (भयाहू)

सावली विहीर के समीप शामा के छोटे भाई बापाजी रहते थे। एक बार उनकी पत्नी को गिल्टियों वाला प्लेग हो गया। उसे ज्वर हो आया और उसकी जाँघ में प्लेग की दो गिल्टियाँ निकल आई। बापाजी दौड़कर शामा के पास आए सहायता के लिए चलने को कहा। शामा भयभीत हो उठे। उन्होंने सदैव की भाँति बाबा के पास जाकर उन्हें नमस्कार किया और सहायता के लिए उनसे प्रार्थना की तथा भ्राता के घर प्रस्थान करने की अनुमति माँगी। बाबा ने कहा कि इतनी रात्रि व्यतीत हो चुकी है। अब इस समय तुम कहाँ जाओगे? केवल उदी ही भेज दो । ज्वर और गिल्टी की चिन्ता क्यों करते हो? भगवान् तो अपने पिता और स्वामी हैं। वह शीघ्र ही स्वस्थ हो जाएगी । अभी मत जाओ । प्रातःकाल जाना और शीघ्र ही लौट आना।

शामा को तो उस मृत-संजीवनी ' उदी' पर पूर्ण विश्वास था। उसे ले जाकर उसके भ्राता ने थोड़ी सी गिल्टी और माथे पर लगाई और कुछ जल में घोलकर रोगी को पिला दी । वैसे ही उसका सेवन किया गया, वैसे ही पसीना वेग से प्रवाहित होने लगा, ज्वर मन्द पड़ गया और रोगी प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो गया । दूसरे दिन बापाजी ने अपनी पत्नी को स्वस्थ देखकर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया कि न तो ज्वर ही है और न गिल्टी का कोई चिह्न ही। दूसरे दिन जब शामा बाबा की अनुज्ञा प्राप्त कर वहाँ पहुँचे तो अपने भाई की स्त्री को चाय बनाते देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ । अपने भाई से पूछताछ करने पर उन्हें पता चला कि बाबा की उदी ने एक रात्रि में ही रोग को समूल नष्ट कर दिया है। तब शामा को बाबा के शब्दों का मर्म समझ में आया कि '' प्रातःकाल जाओ और शीघ्र लौटकर आओ। ''

चाय पीकर शामा लौट आया और बाबा को प्रणाम करने के पश्चात् कहने लगा कि ''देवा! यह तुम्हारा क्या नाटक है? पहले बवंडर उठा कर हमें अशांत कर देते हो, फिर हमारी शीघ्र सहायता कर सब ठीकठाक कर देते हो। '' बाबा ने उत्तर दिया कि, ''तुम्हें ज्ञात होगा कि कर्म पथ अति रहस्यपूर्ण है। यद्यपि मैं कुछ भी नहीं करता, फिर भी लोग मुझे ही कर्मो के लिए दोषी ठहराते हैं। मैं तो एक दर्शक मात्र ही हूँ। **केवल ईश्वर ही एक सत्ताधारी और प्रेरणा देने वाले हैं। वे ही परम दयालु हैं। मैं न तो ईश्वर हूँ और न मालिक, केवल उनका एक आज्ञाकारी सेवक ही हूँ और सदैव उनका स्मरण किया करता हूँ । जो निरभिमान होकर अपने को कृतज्ञ समझ कर उन पर पूर्ण विश्वास करेगा, उसके कष्ट दूर हो जाएँगे और उसे मुक्ति की प्राप्ति होगी ।''**

ईरानी कन्या

अब एक ईरानी भद्र पुरुष का अनुभव पढ़िए। उनकी छोटी कन्या घंटे-घंटे पर मूर्च्छित हो जाया करती थी। उसके हाथ-पैरे ऐंठ जाते और वह बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ती थी। जब नाना प्रकार के उपचारों से भी उसे कोई लाभ न हुआ, तब कुछ लोगों ने उस ईरानी से बाबा की उदी की बहुत प्रशंसा की और कहा कि वह विलेपार्ला (बम्बई) में काकासाहेब दीक्षित के पास से ही प्राप्त हो सकती है। तब ईरानी महाशय ने वहाँ से उदी लाकर जल में घोलकर अपनी बेटी को पिलाया । प्रारम्भ में जो दौरे एक घंटे के अन्तर से आया करते थे, बाद में वे सात घंटे के अन्तर से आए और कुछ दिनों के पश्चात् तो वह पूर्ण स्वस्थ हो गई।

हरदा के महानुभाव

हरदा के एक महानुभाव पथरी रोग से ग्रस्त थे। यह पथरी केवल शल्यचिकित्सा द्वारा ही निकाली जा सकती थी। लोगों ने भी उन्हें ऐसा ही करने का परामर्श दिया । वे बहुत ही वृद्ध तथा दुर्बल थे और अपनी दुर्बलता देखकर उन्हें शल्यचिकित्सा कराने का साहस न हो रहा था। इस हालत में उनकी व्याधि का और इलाज ही क्या था? इसी समय नगर के इनामदार भी वहाँ आए हूए थे, जो बाबा के परम भक्त थे तथा उनके पास उदी भी थी। कुछ मित्रों के परामर्श देने पर उनके पुत्र ने उनसे कुछ उदी प्राप्त कर अपने वृद्ध पिता को जल में मिलाकर पीने को दी। केवल पाँच मिनट में ही उदी के पेट में जाते ही पथरी मल- मूत्रेन्द्रिय के द्वार से बाहर निकल गई और वह वृद्ध शीघ्र ही स्वस्थ हो गया।

बम्बई की महिला की प्रसव-पीड़ा

बम्बई की कायस्थ प्रभु जाति की एक महिला को प्रसव-काल में असहनीय वेदना हुआ करती थी। जब वह गर्भवती हो जाती तो बहुत घबराती और किंकर्त्तव्यमूढ़ हो जाया करती थी। इसके उपचारार्थ उनके एक मित्र श्रीराम मारुति ने उसके पति को सुझाव दिया कि यदि इस पीड़ा से मुक्ति चाहते हो तो अपनी पत्नी को शिरड़ी ले जाओ।

दुबारा जब उनकी स्त्री गर्भवती हुई तो वे दोनों पति-पत्नी शिरडी आये और वहाँ कुछ मास ठहरे। वे बाबा की नित्य सेवा करने लगे। उन्हें बाबा के सत्संग का भी बहुत कुछ लाभ हुआ । कुछ दिनों के पश्चात् जब प्रसव-काल समीप आया, तब सदैव की भाँति गर्भाशय के द्वारा में रुकावट के साथ अधिक वेदना होने लगी। उनकी समझ में नहीं आता था कि अब क्या करना चाहिए? थोड़ी ही देर में एक पड़ोसिन आई और उसने मन ही मन बाबा से सहायता की प्रार्थना कर जल में उदी मिला उसे पीने को दी । तब केवल पाँच मिनिट में ही बिना किसी कष्ट के प्रसव हो गया । बालक तो अपने भाग्यानुसार ही उत्पन्न हुआ, परन्तु उसकी माँ की पीड़ा और कष्ट सदा के लिए दूर हो गए । वे अपने को बाबा का बड़ा कृतज्ञ समझने लगे और जीवनपर्यंत उनके आभारी बने रहे।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ३५ ।।

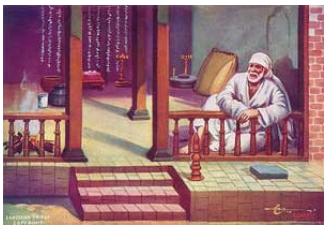

काका महाजनी के मित्र और सेठ, निर्बीज मुनक्के; बान्द्रा निवासी एक गृहस्थ की नींद न आने की घटना; बालाजी पाटील नेवासकर; बाबा का सर्प के रुप में प्रगट होना।

इस अध्याय में भी उदी का माहात्म्य ही वर्णित है इसमें ऐसी दो घटनाओं का उल्लेख है कि परीक्षा करने पर देखा गया कि बाबा ने दक्षिणा अस्वीकार कर दी। पहले इन घटनाओं का वर्णन किया जाएगा

आध्यात्मिक विषयों में साम्प्रदायिक प्रवृत्ति उन्नति के मार्ग में एक बड़ा रोड़ा है। निराकारवादियों से कहते सुना जाता है कि ईश्वर की सगुण उपासना केवल एक भ्रम ही है और संतगण भी अपने सदृश ही सामान्य पुरुष हैं। इस कारण उनकी चरण वन्दना कर उन्हें दक्षिणा क्यों देनी चाहिए ? अन्य पन्थों के अनुयायियों का भी ऐसा ही मत है कि अपने सद्‌गुरु के अतिरिक्त अन्य सन्तों को नमन तथा उनकी भक्ति न करनी चाहिए। इसी प्रकार की उनेक आलोचनाएँ साईबाबा के सम्बंध में पहले सूनने में आया करती थीं तथा अभी भी आ रही हैं । किसी का कथन था कि जब हम शिरड़ी को गए तो बाबा ने हमसे दक्षिणा माँगी। क्या इस भाँति दक्षिणा ऐंठना एक सन्त के लिये शोभनीय था? जब वे इस प्रकार आचरण करते हैं तो फिर उनका साधु-धर्म काँ रहा? परन्तु ऐसी भी कई घटनाएँ अनुभव में आई हैं कि जिन लोगों ने शिरड़ी जाकर अविश्वास से बाबा के दर्शन किये, उन्होंने ही सर्वप्रथम बाबा को प्रणाम कर प्रार्थना भी की। ऐसे ही कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

काका महाजनी के मित्र

काका महाजनी के मित्र निराकारवादी तथा मूर्त्ति-पूजा के सर्वथा विरुद्ध थे। कौतूहलवश वे काका महाजनी के साथ दो शर्त्तों पर शिरडी चलने को सहमत हो गए कि (१) बाबा को नमस्कार न करेंगे और (२) न कोई दक्षिणा ही उन्हें देंगे । जब काका ने स्वीकारत्मक उत्तर दे दिया , तब फिर शनिवार की रात्रि को उन दोनों ने बम्बई से प्रस्थान कर दिया और दूसरे ही दिन प्रातःकाल शिरड़ी पहुँच गए। जैसे ही उन्होंने मस्जिद में पैर रखा, उसी समय बाबा ने उनके मित्र की ओर थोड़ी देर देखकर उनसे कहा कि '' अरे आइए, श्रीमान् पधारिए। आपका स्वागत है।'' इन शब्दों का स्वर कुछ विचित्र -सा था और उनकी ध्वनि प्रायः उन मित्र के पिता के बिलकुल अनुरुप ही थी । तब उन्हें अपने कैलासवासी पिता की स्मृति हो आई और वे आनन्द विभोर हो गए । क्या मोहिनी थी उस स्वर में ? आश्चर्ययुक्त स्वर में उनके मित्र के मुख से निकल पड़ा कि निस्संदेह यह स्वर मेरे पिताजी का ही है। तब वे शीघ्र ही ऊपर दौड़कर गए और अपनी सब प्रतिज्ञाएँ भूलकर उन्होंने बाबा के श्री-चरणोंपर अपना मस्तक रख दिया।

बाबा ने काकासाहेब से तो दोपहर में तथा विदाई के समय दोबार दक्षिणा माँगी, परन्तु इनके मित्र से एक शब्द भी न कहा। उनके मित्र ने फुसफुसाते हुए कहा कि ''भाई! देखो , बाबा ने तुमसे तो दो बार दक्षिणा माँगी, परन्तु मैं भी तो तुम्हारे साथ हूँ , फिर वे मेरी इसप्रकार उपेक्षा क्यों करते हैं?'' काका ने उत्तर दिया कि ''उत्तम तो यह होगा कि तुम स्वयं ही बाबा से यह पूछ लो ।'' बाबा ने पूछा कि '' यह क्या कानाफूसी हो रही है?'' तब उनके मित्र ने कहा कि '' क्या मैं भी आपको दक्षिणा दूँ।'' बाबा नक कहा कि '' तुम्हारी अनिच्छा देखकर मैंने तुमसे दक्षिणा नहीं माँगी, परन्तु यदि तुम्हारी इच्छा ऐसी ही है तो तुम दक्षिणा दे सकते हो। '' तब उन्होंने सत्रह रुपये भेंट किए, जितने काका ने दिये थे। तब बाबा ने उन्हें उपदेश दिया कि **'' अपने बीच जो तेली की दीवाल (भेदभाव) है, उसे नष्ट कर दो, जिससे हम परस्पर देखकर अपने मिलन का पथ सुगम बना सकें ।''** बाबा ने उन्हें लौटने की अनुमति देते हुए कहा कि '' तुम्हारी यात्रा सफल रहेगी।'' यद्यपि आकाश में बादल छाए हुए थे और वायु वेग से चल रही थी तो भी दोनों सकुशल बम्बई पहुँच गए। घर पहुँचकर जब उन्होंने द्वार तथा खिड़कियाँ खोलीं तो वहाँ तो वहाँ दो मृत चमगादड़ पड़े देखे। एक तीसरा उनके सामने ही फुर्र करके खिड़की में से उड़ गया। उन्हें विचार आया कि यदि मैंने खिड़की खुली छोड़ी होती तो इन जीवों के प्राण अवश्य बच गए होते, परन्तु फिर उन्हें

विचार आया कि यह उनके भाग्यानुसार ही हुआ है और बाबा ने तीसरे की प्राण-रक्षा के हेतु हमें शीघ्र ही वहाँ से वापस भेज दिया है।

काका महाजनी के सेठ

बम्बई में ठक्कर धरमसी जेठाभाई सॉलिसिटर (कानूनी सलाहकार) की एक फर्म थी। काका इस फर्म के व्यवस्थापक थे। सेठ और व्यवस्थापक के सम्बन्ध परस्पर अच्छे थे। श्रीमान ठक्कर को ज्ञात था कि काका बहुधा शिरड़ी जाया करते हैं और वहाँ कुछ दिन ठहरकर बाबा की अनुमति से ही वापस लौटते है। कौतूहलवश बाबा की परीक्षा करने के विचार से उन्होंने भी होलिकोत्सव के अवसर पर काका के साथ ही शिरड़ी जाने का निश्चय किया। काका का शिरड़ी से लौटना सदैव अनिश्चित सा ही रहता था, इसलिए अपने साथ एक मित्र को लकर वे तीनों रवाना हो गए। मार्ग में काका ने बाबा को अर्पित करने के हेतु दो सेर मुनक्का मोल ले लिया। ठीक समय पर शिरड़ी पहुँच कर वे उनके दर्शनार्थ मस्जिद में गए। बाबासाहेब तर्खड भी तब वहीं पर थे । श्री. ठक्कर ने उनसे आने का हेतु पूछा। तर्खड ने उत्तर दिया कि मैं तो दर्शनों के लिए ही आया हूँ । मुझे चमत्कारों से कोई प्रयोजन नहीं। यहाँ तो भक्तों की हार्दिक इच्छाओं की पूर्ति होती है । काका ने बाबा को नमस्कार कर उन्हें मुनक्के अर्पित किए। तब बाबा ने उन्हें वितरित करने की आज्ञा दे दी। श्रीमान् ठक्कर को भी कुछ मुनक्के मिले । एक तो उन्हें मुनक्का रुचिकर न लगता था, दूसरे इस प्रकार अस्वच्छ खाने की डॉक्टर ने मनाही कर दी थी। इसलिए वे कुछ निश्चय न कर सके और अनिच्छा होते हुए भी उन्हें ग्रहण करना पड़ी और फिर दिखावे मात्र के लिए ही उन्होंने मुँह में डाल लिया। अब समझ में न आता था कि उनके बीजों का क्या करें। मस्जिद की फर्श पर तो थूका नहीं जा सकता था, इसलिए उन्होंने वे बीज अपनी इच्छा के विरुद्ध अपने खीसे में डाल लिए और सोचने लगे कि जब बाबा सन्त हैं तो यह बात उन्हें कैसे अविदित रह सकती है कि मुझे मुनक्कों से घृणा है? फिर क्या वे मुझे इसके लिए लाचार कर सकते हैं? जैसे ही यह विचार उनके मन में आया, बाबा ने उन्हें कुछ और मुनक्के दिए, पर उन्होंने खाया नहीं और अपने हाथ में ले लिया । तब बाबा ने उन्हें खा लेने को कहा। उन्होंने आज्ञा का पालन किया और चबाने पर देखा कि वे सब निर्बीज हैं। वे चमत्कार की इच्छा रखते थे, इसलिए उन्हें देखने को भी मिल गया। उन्होंने सोचा कि बाबा समस्त विचारों को तुरन्त जान लेते हैं और मेरी इच्छानुसार ही उन्होंने उन्हें बीजरहित बना दिया है। क्या अद्‌भुत शक्ति है उनमें ? फिर शंका-निवारणार्थ उन्होंने तर्खड से, जो समीप ही बैठे हुए थे और जिन्हें भी थोड़े मुनक्के मिले थे, पूछा कि किस किस्म के मुनक्के तुम्हें मिले? उत्तर मिला '' अच्छे बीजों वाले।'' श्रीमान् ठक्कर को तब और भी आश्चर्य हुआ। अब उन्होंने अपने अंकुरित विश्वास को दृढ़ करने के लिए मन में निश्चय किया कि यदि बाबा वास्तव में सन्त हैं तो अब सर्वप्रथम मुनक्के काका को ही दिए जाने चाहिए। इस विचार को जानकर बाबा ने कहा कि अब पुनः वितरण काका से ही आरम्भ होना चाहिए। यह सब प्रमाण श्री. ठक्कर के लिए पर्याप्त ही थे।

फिर शामा ने बाबा से परिचय कराया कि आप ही काका के सेठ हैं। बाबा कहने लगे कि ये उनके सेठ कैसे हो सकते हैं? इनके सेठ तो बड़े विचित्र हैं। काका इस उत्तर से सहमत हो गए। अपनी हठ छोड़कर ठक्कर ने बाबा को प्रणाम किया और वाड़े को लौट आए। मध्याह्न की आरती समाप्त होने के उपरान्त वे बाबा से प्रस्थान करने की अनुमति प्राप्त करने के लिये मस्जिद में आये । शामा ने उनकी कुछ सिफारिश की, तब बाबा इस प्रकार बोलेः-

''एक सनकी मस्तिष्क वाला सभ्य पुरुष था, जो स्वस्थ और धनी भी था। शारीरिक तथा मानसिक व्यथयओं से मुक्त होने पर भी वह स्वतःही अनावश्यक चिंताओं में डूबा रहता और व्यर्थ ही यहाँ-वहाँ भटक कर अशान्त बना रहता था। कभी वह स्थिर और कभी चिन्तित रहता था। उसकी ऐसी स्थिति देखकर मुझे दया आ गई और मैंने उससे कहा कि कृपया अब **आप अपना विश्वास एक इच्छित स्थान पर स्थिर कर लें । इस प्रकार व्यर्थ भटकने से कोई लाभ नहीं।''**

''शीघ्र ही एक निर्दिष्ट स्थान चुन लो'' - इन शब्दों से ठक्कर की समझ में तुरन्त आ गया कि यह सर्वथा मेरी ही कहानी है। उनकी इच्छा थी किं काका भी हमारे साथ ही लौटें । बाबा ने उनका ऐसा विचार जानकर काका को सेठ के साथ ही लौटने की अनुमति दे दी। किसी को विश्वास न था कि काका इतने शीघ्र शिरड़ी से प्रस्थान कर सकेंगे। इस प्रकार ठक्कर को बाबा की विचार जानने की कला का एक और प्रमाण मिल गया।

तब बाबा ने काका से १५ रुपये दक्षिणा माँगी और कहने लगे कि '' यदि मैं किसी से एक रुपया दक्षिणा लेता हूँ तो उसे दसगुना लौटाया करता हूँ। मैं किसी की कोई वस्तु बिना मूल्य नहीं लेता और न तो प्रत्येक से माँगता ही हूँ । जिसकी ओर फकीर (ईश्वर) इंगित करते हैं, उससे ही मैं माँगता हूँ और जो गत जन्म का ऋणी होता है, उसकी ही दक्षिणा स्वीकार हो जाती है। **दानी देता है और भविष्य में सुन्दर उपज का बीजारोपण करता है।** धन का उपयोग धर्मोपार्जन के ही निमित्त होना चाहिए। यदि धन व्यक्तिगत आवश्यकताओं में व्यय किया गया तो यह उसका दुरुपयोग है। यदि तुमने पूर्व जन्मों में दान नहीं दिया है तो इस जन्म में पाने की आशा कैसे कर सकते हो? इसलिए **यदि प्राप्ति की आशा रखते हो तो अभी दान करो।** दक्षिणा देने से वैराग्य की वृद्धि होती है और वैराग्य प्राप्ति से भक्ति और ज्ञान बढ़ जाते है। **एक दो और दस गुना लो।**

इन शब्दों को सुनकर श्री. ठक्कर ने भी अपना संकल्प भूलकर बाबा को पन्द्रह रुपये भेंट किये। उन्होंने सोचा कि अच्छा ही हुआ, जो मैं शिरडी आ गया । यहाँ मेरे सब सन्देह नष्ट हो गए और मुझे बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त हो गई।

ऐसे विषयों में बाबा की कुशलता बड़ी अद्वितीय थी। यद्यपि वे सब कुछ करते थे, फिर भी वे इन सबसे अलिप्त रहते थे। नमस्कार करने या न करने वाले ; दक्षिणा देने या न देने वाले; दोनों ही उनके लिए एक समान थे। उन्होंने कभी किसी का अनादर नहीं किया। यदि भक्त उनका पूजन करते तो इससे उन्हें न कोई प्रसन्नता होती और यदि कोई उनकी उपेक्षा करता तो न कोई दुःख ही होता। वे सुख और दुःख की भावना से परे हो चुके थे।

अनिद्रा

बान्द्रा के एक महाशय कायस्थ प्रभु बहुत दिनों से नींद न आने के कारण अस्वस्थ थे। जैसे ही वे सोने लगते, उनके स्वर्गवासी पिता स्वप्न में आकर उन्हें बुरी तरह गालियाँ देते दिखने लगते थे। इससे निद्रा भंग हो जाती और वे रात्रिभर अशांति महसूस करते थे। हर रात्रि को ऐसा ही होता था, जिससे वे किंकर्त्तव्य -विमूढ़ हो गए। एक दिन बाबा के एक भक्त से उन्होंने इस विषय में परामर्श किया। उसने कहा कि मैं तो संकटमोचन सर्व-पीड़ा-निवारिणी उदी को ही इसकी रामबाण औषधि मानता हूँ, जो शीघ्र ही लाभदायक सिद्ध होगी । उन्होंने एक उदी की पुड़िया देकर कहा कि इसे शयन के पूर्व माथे पर लगाकर अपने सिरहाने रखो। फिर तो उन्हें निर्विघ्न प्रगाढ़ निद्रा आने लगी। यह देखकर उन्हें महान् आश्चर्य और आनन्द हुआ। यह क्रम चालू रखकर वे अब साईबाबा का ध्यान करने लगे । बाजार से उनका एक चित्र लाकर उन्होंने अपने सिरहाने के पास लगाकर उनका नित्य पूजन करना प्रारम्भ कर दिया। प्रत्येक गुरुवार को वे हार और नैवद्य अर्पण करने लगे। वे अब पूर्ण स्वस्थ हो गये और पहले के सारे कष्टों को भूल गए।

बालाजी पाटील नेवासकर

ये बाबा के परम भक्त थे । ये उनकी निष्काम सेवा किया करते थे । दिन में जिन रास्तों से बाबा निकलते थे, उन्हें वे प्रातःकाल ही उठकर झाडू लगाकर पूर्ण स्वच्छ रखते थे। इनके पश्चात् यह कार्य बाबा की एक परमभक्त महिला राधाकृष्ण माई ने किया और फिर अब्दूल ने । बालाजी जब अपनी फसल काटकर लाते तो वे सब अनाज उन्हें भेंट कर दिया करते थे। उसमें से जो कुछ बाबा उन्हें लौटा देते , उसी से वे अपने कुटुम्ब का भरणपोषण किया करते थे। यह क्रम अनेक वर्षों तक चला और उनकी मृत्यु के पश्चात भी उनके पुत्र ने इसे जारी रखा।

उदी की शक्ति और महत्त्व

एक बार बालाजी के श्राद्ध दिवस की वार्षिकी (बरसी) के अवसर पर कुछ व्यक्ति आमंत्रित किए गए । जितने लोगों के लिए भोजन तैयार किया गया , उससे कहीं तिगुने लोग भोजन के समय एकत्रित हो गए। यह देख श्रीमती नेवासकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ -सी हो गई । उन्होंने सोचा कि यह भोजन सबके लिए पर्याप्त न होगा और कहीं कम पड़ गया तो कुटुम्ब की भारी अपकीर्ति होगी। तब उनकी सास ने उनसे सान्त्वना-पूर्ण शब्दों में कहा कि चिन्ता न करो । यह भोजन-सामग्री हमारी नहीं, यह तो श्री साईबाबा की है। प्रत्येक बर्त्तन में उदी डालकर उन्हें

वस्त्र से ढँक दो और बिना वस्त्र हटाए सबको परोस दो। वे ही हमारी लाज बचाएँगे । परामर्श के अनुसार ही किया गया। भोजनार्थियों के तृप्तिपूर्वक भोजन करने के पश्चात् भी भोजन सामग्री यथेष्ठ मात्रा में शेष देखकर उन लोगों को महान् आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। यथार्थ में देखा जाए तो जैसा जिसका भाव होता है, उसके अनुकूल ही अनुभव प्राप्त होता है। ऐसी ही घटना मुझे प्रथम श्रेणी के उपन्यायाधीश तथा बाबा के परम भक्त श्री.बी.ए. चौगुले ने बतलाई। फरवरी , सन् १९४३ में करजत (जिला अहमदनगर) में पूजा का उत्सव हो रहा था, तभी इस अवसर पर एक बृहत् भोज का आयोजन हुआ। भोजन के समय आमंत्रित लोगों से लगभग पाँच गुने अधिक भोजन के लिए आये, फिर भी भोजन सामग्री कम नहीं हुई। बाबा की कृपा से सबको भोजन मिला, यह सबको आश्चर्य हुआ।

साईबाबा का सर्प के रुप में प्रगट होना

शिरड़ी के रघु पाटील एक बार नेवासे के बालाजी पाटील के पास गए, जहाँ सन्ध्या को उन्हें ज्ञात हुआ कि एक साँप फुफकारता हुआ गौशाला में घुस गया है। सभी पशु भयभीत होकर भागने लगे। घर के लोग भी घबरा गए, परन्तु बालाजी ने सोचा कि श्री साई ही इस रुप में यहाँ प्रगट हुए हैं। तब वे एक प्याले में दूध ले आए और निर्भय होकर उस सर्प के सम्मुख रखकर उनको इस प्रकार सम्बोधित कर कहने लगे कि '' बाबा! आप फुफकार कर शोर क्यों कर रहे हैं? क्या आप मुझे भयभीत करना चाहते हैं? यह दूध का प्याला लीजिए और शांतिपूर्वक पी लीजिए'' ऐसा कहकर वे बिना किसी भय के उसके समीप ही बैठ गये । अन्य कुटुम्बी जन तो बहुत घबड़ा गए और उनकी समझ में न आ रहा था कि अब वे क्या करें? थोडी देर में ही सर्प अदृश्य हो गया और किसी को भी पता न चला कि वह कहाँ गया । गौशाला में सर्वत्र देखने पर भी वहाँ उसका कोई चिह्न न दिखाई दिया।

एक ऐसी ही घटना साई-सुधा (भाग ३ नं. ७-८ , जनवरी ४३, पृष्ठ २६) में प्रकाशित है कि बाबा कोयंबटूर (दक्षिण भारत) में ७ जनवरी, सन् ४३ गुरुवार की सन्ध्या को साढ़े तीन बजे सर्प के रुप में प्रगट हुए, जहाँ उस सर्प ने भजन सुनकर दूध और फूल स्वीकार किए तथा हजारों लोगों की भीड़ को दर्शन देकर अपनी फोटो भी उतारने दिया । फोटो उतारते समय, बाबा का चित्र भी उसके समीप रखकर दोनों की ही फोटो उतारी गई। चित्र और अन्य विवरण के लिए पाठकों से प्रार्थना है कि वे उपर्युक्त पत्रिका का अवश्य अवलोकन करें।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।

सप्ताह पारायणः पंचम विश्राम

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ३६ ।।

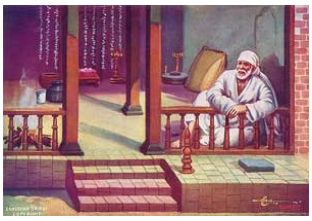

आश्चर्यजनक कथाएँ

(१) गोवा के दो सज्जन और (२) श्रीमती औरंगाबादकर।

इस अध्याय में गोवा के दो महानुभावों और श्रीमती औरंगाबादकर की अद्‌भुत कथाओं का वर्णन है।

गोवा के दो महानुभाव

एक समय गोवा से दो महानुभाव श्रीसाईबाबा के दर्शनार्थ शिरड़ी आए। उन्होंने आकर उन्हें नमस्कार किया। यद्यपि वे दोनों एक साथ ही आए थे, फिर भी बाबा ने केवल एक ही व्यक्ति से पन्द्रह रुपये दक्षिणा माँगी, जो उन्हें आदरसहित दे दी गई। दूसरा व्यक्ति भी उन्हें सहर्ष ३५ रुपये दक्षिणा देने लगा तो उन्होंने उसकी दक्षिणा लेना अस्वीकार कर दिया । लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ । उस समय शामा भी वहाँ उपस्थित थे । उन्होंने कहा कि '' देवा ! यह क्या, ये दोनों एक साथ ही तो आए हैं। इनमें से एक की दक्षिणा तो आप स्वीकार करते हैं और दूसरा जो अपनी इच्छा से भेंट दे रहा है, उसे अस्वीकृत कर रहे हैं? यह भेद क्यों ?'' तब बाबा ने उत्तर दिया कि '' शामा! तुम नादान हो । मैं किसी से कभी कुछ नहीं लेता। यह तो मस्जिदमाई ही अपना ऋण माँगती है और इसलिए देने वाला अपना ऋण चुकता कर मुक्त हो जाता है। क्या मेरे कोई घर, सम्पति या बाल-बच्चे हैं, जिनके लिए मुझे चिन्ता हो? मुझे तो किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। मैं तो सदा स्वतंत्र हूँ । ऋण, शत्रुता तथा हत्या इन सबका प्रायश्चित अवश्य करना पड़ता है और इनसे किसी प्रकार भी छुटकारा संभव नहीं है। तब बाबा अपने विशष ढंग से इस प्रकार कहने लगेः-

'' अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में ये महाशय निर्धन थे। इन्होंने ईश्वर से प्रतिज्ञा की थी कि यदि मुझे नौकरी मिल गई तो मैं एक माह का वेतन तुम्हें अर्पण करुँगा। इन्हें १५ रुपये माहवार की एक नौकरी मिल गई। फिर उत्तरोंत्तर उन्नति होते होते ३०,६०,१००, २०० और अन्त में ७०० रुपये तक मासिक वेतन हो गयां । परन्तु समृद्धि पाकर ये अपना वचन भूल गए और उसे पूरा न कर सके । अब अपने शुभ कर्मो के ही प्रभाव से इन्हें यहाँ तक पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । अतः मैने इनसे केवल पन्द्रह रुपये ही दक्षिणा माँगी, जो इनके पहले माह की पगार थी।''

दूसरी कथा

'' समुद्र के किनारे घुमते-घूमते मैं एक भव्य महल के पास पहुँचा और उसकी दालान में विश्राम करने लगा। उस महल के ब्राह्मण स्वामी ने मेरा यथोचित स्वागत कर मुझे बढ़िया स्वादिष्ट पदार्थ खाने को दिये । भोजन के उपरान्त उसने मुझे आलमारी के समीप एक स्वच्छ स्थान शयन के लिए बतला दिया और मैं वहीं सो गया। जब मैं प्रगाढ़ निद्रा में था तो उस व्यक्ति ने पत्थर खिसकाकर दीवार में सेंध डाली और उसके द्वारा भीतर घुसकर उसने मेरा खीसा कतर लिया। निद्रा से उठने पर मैंने देखा कि मेरे तीस हजार रुपये चुरा लिए गए हैं। मैं बड़ी विपत्ति में पड गया और दुःखित होकर रोता बैठ गया। केवल नोट ही नोट चुरा लिये थे, इसलिए मैंने सोचा कि यह कार्य उस ब्राह्मण के अतिरिक्त और किसी का नहीं है। मुझे खाना-पीना कुछ भी अच्छा न लगा और मैं एक पखवाड़े तक दालान में ही बैठे बैठे चोरी का दुःख मनाता रहा । इस प्रकार पन्द्रह दिन व्यतीत होने पर रास्ते से जाने वाले एक फकीर ने मुझे दूःख से बिलखते देखकर मेरे रोने का कारण पूछा। तब मैंने सब हाल उससे कह सुनाया। उसने मुझसे कहा कि यदि तुम मेरे आदेशानुसार आचरण करोगे तो तुम्हारा चुराया धन वापस मिल जाएगा । मैं एक फकीर का पता तुम्हें बताए देता हूँ। तुम उसकी शरण में जाओ और उसकी कृपा से तुम्हें तुम्हारा धन पुनः मिल जाएगा। परन्तु जब तक तुम्हें अपना धन वापस नहीं मिलता, उस समय तक तुम अपना प्रिय भोजन त्याग दो। मैंने

उस फकीर का कहना मान लिया और मेरा चुराया धन मिल गया। तब मैं समुद्र तट पर आया, जहाँ एक जहाज खड़ा था, जो यात्रियों से ठसाठस भर चुका था । भाग्यवश वहाँ एक उदार प्रकृतिवाले चपरासी की सहायता से मुझे एक स्थान मिल गया। इस प्रकार मैं दूसरे किनारे पर पहूँचा और वहाँ से मैं रेलगाड़ी में बैठकर मस्जिद माई आ पहुँचा।''

कथा समाप्त होते ही बाबा ने शामा से इन अतिथियों को अपने साथ ले जाने और भोजन का प्रबन्ध करने को कहा। तब शामा उन्हें अपने घर लिवा ले गया और उन्हें भोजन कराया । भोजन करते समय शामा ने उनसे कहा कि '' बाबा की कहानी बड़ी ही रहस्यपूर्ण है, क्योंकि न तो वे कभी समुद्र की ओर गए है और न उनके पास तीस हजार रुपये ही थे। उन्होंने न कहीं भी यात्रा ही की, न उनकी कोई रकम ही चुरायी गई और न वापस आई ।'' फिर शामा ने उन लोगों से पूछा कि '' आप लोगों को कुछ समझ में आया कि इसका अर्थ क्या था?'' दोनों अतिथियों की घिग्घियाँ बँध गई और उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। उन्होंने रोते-रोते कहा कि '' बाबा तो सर्वव्यापी, अनन्त और परब्रह्म स्वरुप हैं। जो कथा उन्होंने कही है, वह बिलकुल हमारी ही कहानी है और वह मेरे ऊपर बीत चुकी है। यह महान् आश्चर्य है कि उन्हें यह सब कैसे ज्ञात हो गया ? भोजन के उपरान्त हम इसका पूर्ण विवरण आपको सुनाएँगे ।''

भोजन के पश्चात् पान खाते हुए उन्होंने अपनी कथा सुनाना प्रारम्भ कर दिया । उनमें से एक कहने लगाः- '' घाट में एक पहाड़ी स्थान पर हमारा निवास-स्थान है। मैं अपने जीवन-निर्वाह के लिए नौकरी ढूँढने गोवा आया था। तब मैंने भगवान् दत्तात्रेय को वचन दिया था कि यदि मुझे नौकरी मिल गई तो मैं तुम्हें एक माह की पगार भेंट चढ़ाऊँगा । उनकी कृपा से मुझे पन्द्रह रुपये मासिक की नौकरी मिल गई और जैसा कि बाबा ने कहा, उसी प्रकार मेरी उन्नति हुई। मैं अपना वचन बिलकुल भुल गया था। बाबा ने उसकी स्मृति दिलाई और मुझसे पन्द्रह रुपये वसूल कर लिए। आप लोग इसे दक्षिणा न समझें। यह तो एक पुराने ऋण का भुगतान है तथा दीर्घ काल से भूली हुई प्रतिज्ञा आज पूर्ण हुई है।

शिक्षा

यथार्थ में बाबा ने कभी किसी से पैसा नहीं माँगा और न ही अपने भक्तों को ही माँगने दिया। वे आध्यात्मिक उन्नति में कांचन को बाधक समझते थे और भक्तों को उसके पाश से सदैव बचाते रहते थे। भगत म्हालसापति इसके उदाहरणस्वरुप हैं। वे बहुत निर्धन थे और बड़ी कठिनाई से ही अपना जीवन बिताते थे। बाबा उन्हें कभी पैसा माँगने नहीं देते थे और न ही वे अपने पास की दक्षिणा में से उन्हें कुछ देते थे। एक बार एक दयालु और सहृदय व्यापारी हंसराज ने बाबा की उपस्थिति में ही एक बड़ी रकम म्हालसापति को दी, परन्तु बाबा ने उनसे उसे अस्वीकार करने को कह दिया।

अब दूसरा अतिथि अपनी कहानी सुनाने लगा। '' मेरे पास एक ब्राह्मण रसोइया था, जो गत ३५ वर्षो से ईमानदारी से मेरे पास काम करता आया था। बुरी आदतों में पड़कर उसका मन पलट गया और उसने मेरे सब रुपये चोरी कर लिए। मेरी आलमारी दीवार में लगी थी और जिस समय हम लोग गहरी नींद में थे, उसने पीछेसे पत्थर हटा कर मेरे सब तीन हजार रुपयों के नोट चुरा लिए। मैं नहीं जानता कि बाबा को यह ठीक-ठीक धन-राशि कैसे ज्ञात हो गई? मैं दिन-रात रोता और दुःखी रहता था। एक दिन जब मैं इसी प्रकार निराश और उदास होकर बरामदे में बैठा था, उसी समय रास्ते से जाने वाले एक फकीर ने मेरी स्थिति जानकर मुझसे इसका कारण पूछा। मैंने उसे सब हाल कह सुनाया। तब उसने बताया कि कोपरगाँव तालुके के शिरड़ी ग्राम में श्री साईबाबा नाम के एक औलिया रहते हैं। उन्हें वचन दो तथा अपना रुचिकर भोज्य पदार्थ त्याग, मन में कहो कि जब तक मैं तुम्हारा दर्शन न कर लूँगा, उस पदार्थ को कदापि न खाऊँगा। तब मैंने चावल खाना छोड़ दिया और बाबा को वचन दिया, ''बाबा! जब तक मुझे तुम्हारे दर्शन नहीं होते तथा मेरी चुराई गई धन राशि नहीं मिलती, तब तक मैं चावल ग्रहण न करुँगा।'' इस प्रकार जब पन्द्रह दिन बीत गए, तब वह ब्राह्मण स्वयं ही आया और सब धनराशि लौटाकर क्षमायाचनापूर्वक कहने लगा कि मेरी मति ही भ्रष्ट हो गई थी, जो मुझसे अपका ऐसा अपराध बन गया है । मैं आपके पैर पड़ता हूँ। मुझे क्षमा करें। इसप्रकार सब ठीक-ठाक हो गया। जिस फकीर से मेरी भेंट हुई थी तथा जिसने मुझे सहायता पहुँचाई थी, वह फकीर फिर मेरे देखने में कभी नही आया। मेरे मन में श्री साईबाबा के दर्शन की, जिनके लिए फकीर ने मुझसे कहा था, बड़ी तीव्र उत्कंठा हुई। मैंने सोचा कि जो फकीर मेरे घर पर आया

था, वह साईबाबा के अरिरिक्त अन्य कोई नहीं हो सकता। जिन्होंने मुझे कृपाकर दर्शन दिये और मेरी इस प्रकार सहायता की, उन्हें ३५ रुपये का लालच कैसे हो सकता है ? इसके विपरीत वे अहेतुक ही आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर ले जाने का पूरा प्रयत्न करते हैं।''

'' जब चोरी गई राशि मुझे पुनःप्राप्त हो गई, तब मेरे हर्ष का पारावार न रहा। मेरी बुद्धि भ्रमित हो गई और मैं अपना वचन भूल गया। कुलाबा में एक रात्रि को मैंने साईबाबा को स्वप्न में देखा। तभी मुझे अपनी शिरड़ी यात्रा के वचन की स्मृति हो आई। मैं गोवा पहुँचा और वहाँ से एक स्टीमर द्वारा बम्बई पहुँच कर शिरड़ी जाना चाहता था। परन्तु जब मैं किनारे पर पहुँचा तो देखा कि स्टीमर खचाखच भर चुका है और उसमें बिलकुल भी जगह नहीं है। कैप्टन ने तो मुझे चढ़ने न दिया, परन्तु एक अपरिचित चपरासी के कहने पर मुझे स्टीमर में बैठने की अनुमति मिल गई और मैं इस प्रकार बम्बई पहुँचा। फिर रेलगाड़ी में बैठकर यहाँ पहुँच गया। बाबा के सर्वव्यापी और सर्वज्ञ होने में मुझे कोई शंका नही ं है। देखो तो, हम कौन हैं और कहाँ हमारा घर? हमारे भाग्य कितने अच्छे हैं कि बाबा हमारी चुराई गई राशि वापस दिलाकर हमें यहाँ खींच कर लाए। **आप शिरड़ीवासी हम लोगों की अपेक्षा सहस्त्रगुने श्रेष्ठ और भाग्यशाली हैं, जो बाबा के साथ हँसते-खेलते, मधुर भाषण करते और कई वर्षों से उनके समीप रहते हो। यह आप लोगों के गत जन्मों के शुभ संस्कारों का ही प्रभाव है, जो कि बाबा को यहाँ खींच लाया है।** श्री साई ही हमारे लिए दत्त हैं। उन्होंने ही हमसेप्रतिज्ञा कराई तथा जहाज में स्थान दिलाया और हमें यहाँ लाकर अपनी सर्वव्यापकता और सर्वज्ञता का अनुभव कराया।''

श्रीमती औरंगाबादकर

सोलापुर के सखाराम औरंगाबादकर की पत्नी २७ वर्ष की दीर्घ अवधि के पश्चात् भी निःसन्तान ही थीं । उन्होंने सन्तानप्राप्ति के निमित्त देवी और देवताओं की बहुत मन्नते की, परन्तु फिर भी उनकी मनोकामना सिद्ध न हुई। तब वे सर्वथा निराश होकर अन्तिम प्रयत्न करने के विचार से अपने सौतेले पुत्र श्री विश्वनाथ को साथ ले शिरड़ी आईं और वहाँ बाबा की सेवा कर, दो माह रुकीं। जब भी वे मस्जिद को जातीं तो बाबा को भक्त-गण से घिरे हुए पातीं। उनकी इच्छा बाबा से एकान्त में भेट कर सन्तानप्राप्ति के लिये प्रार्थना करने की थी, परन्तु कोई योग्य अवसर उनके हाथ न लग सका। अन्त में उन्होंने शामा से कहा कि '' जब बाबा एकान्त में हों तो मेरे लिए प्रार्थना कर देना।'' शामा ने कहा कि '' बाबा का तो खुला दरबार है। फिर भी यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो मैं अवश्य प्रयत्न करूँगा, परन्तु यश देना तो ईश्वर के हाथ है। भोजन के समय तुम आँगन में नारियल और उदबत्ती लेकर बैठना और जब मैं संकेत करुँ तो खड़ी हो जाना।'' एक दिन भोजन के उपरान्त जब शामा बाबा के गीले हाथ तौलिये से पोंछ रहे थे, तभी बाबा ने उनके गालपर चिकोटी काट ली। तब शामा क्रोधित होकर कहने लगे कि ''देवा ! यह क्या आपके लिए उचित है कि आप इस प्रकार मेरे गालपर चिकोटी काटें? मुझे ऐसे शरारती देव की बिलकुल आवश्यकता नहीं, जो इस प्रकार का आचरण करे। हम आप पर आश्रित हैं, तब क्या यही हमारी घनिष्ठता का फल है?'' बाबा ने कहा, '' अरे! तुम तो ७२ जन्मों से मेरे साथ हो। मैंने अब तक तुम्हारे साथ ऐसा कभी नहीं किया। फिर अब तुम मेरे स्पर्श को क्यों बुरा मानते हो?'' शामा बोले कि '' मुझे तो ऐसा देव चाहिए, जो हमें सदा प्यार करे और नित्य नया-नया मिष्ठान्न खाने को दे। मैं तुमसे किसी प्रकार के आदर की इच्छा नहीं रखता और न मुझे स्वर्ग आदि ही चाहिए। मेरा तो विश्वास सदैव तुम्हारे चरणों में ही जागृत रहे, यही मेरी अभिलाषा है।''तब बाबा बोले कि '' हाँ, सचमुच मैं इसीलिए यहाँ आया हूँ। मैं सदैव तुम्हारा पालन और उदरपोषण करता आया हूँ, इसीलिए मुझे तुमसे अधिक स्नेह है।''

जब बाबा अपनी गादी पर विराजमान हो गए, तभी शामा ने उस स्त्री को संकेत किया। उसने ऊपर आकर बाबा को प्रणाम कर उन्हें नारियल और ऊदबत्ती भेंट की। बाबा ने नारियल हिलाकर देखा तो वह सूखा था और बजता था। बाबा ने शामा से कहा कि ''यह तो हिल रहा है। सुनो, यह क्या कहता है?'' तभी शामा ने तुरन्त कहा कि '' यह बाई प्रार्थना करती हैं कि ठीक इसी प्रकार इनके पेट में भी बच्चा गुड़गुड़ करे, इसलिए आशीर्वादसहित यह नारियल इन्हें लौट दो। '' तब फिर बाबा बोले कि '' क्या नारियल से भी सन्तान की उत्पत्ति होती है? लोग कैसे मूर्ख हैं, जो इस प्रकार की बातें गढ़ते हैं।'' शामा ने कहा कि'' मैं आपके वचनों और आशीष की शक्ति से पूर्ण अवगत हूँ और आपके एक शब्द मात्र से ही इस बाई को बच्चों का ताँता लग जाएगा। आप तो टाल रहे हैं और आशीर्वाद नहीं दे रहे हैं। इस प्रकार कुछ देर तक वार्त्तालाप चलता रहा। बाबा बार-बार नारियल फोड़ने को कहते थे, परन्तु शामा बार-बार यही हठ पकड़े हुए थे कि इसे उस बाई को दे दें। अन्त में बाबा ने कह दिया कि '' इसको

पुत्र की प्राप्ति हो जाएँगी।'' तब शामा ने पूछा कि '' कब तक?'' बाबा ने उत्तर दिया कि ''१२ मास में।'' अब नारियल को फोड़कर उसके दो टुकड़े किये गए। एक भाग तो उन दोनों ने खाया और दूसरा भाग उस स्त्री को दिया गया।

तब शामा ने उस बाई से कहा कि '' प्रिय बहिन ! तुम मेरे वचनों की साक्षी हो। यदि १२ मास के भीतर तुमको सन्तान न हुई तो मैं इस देव के सिर पर ही नारियल फोड़कर इसे मस्जिद से निकाल दूँगा और यदि मैं इसमें असफल रहा तो मैं अपने को माधव नहीं कहूँगा। जो कुछ भी मैं कह रहा हूँ, इसकी सार्थकता तुम्हें शीघ्र ही विदित हो जाएगी।''

एक वर्ष में ही उसे पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई और जब वह बालक पाँच मास का था, उसे लेकर वह अपने पतिसहित बाबा के श्री चरणों में उपस्थित हुई। पति-पत्नी दोनों ने उन्हें प्रणाम किया और कृतज्ञ पिता (श्रीमान् औरंगाबादकर) ने पाँच सौ रुपये भेंट किए, जो बाबा के घोड़े श्याम कर्ण के लिए छत बनाने के काम आए।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ।।